अल-रिसाला

मई-जून 2025

अल-रिसाला
मई-जून 2025

CPS International
centre for peace and spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी
आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
फ़रहाद अहमद ,इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

ईद-उल-अज़हा का सबक	4
पीसफ़ुल एक्टिविज़्म, वायलेंट एक्टिविज़्म	5
क़ुरआन की चंद आयतें	7
मौत का सबक	12
मैदान का इंतिख़ाब	13
हासिल-ए-तजुर्बा	19
ख़ुदा को पाना	19
इंशा अल्लाह	22
इस्लामी सरगर्मी	24
ख़ुदा की रहमत	25
इत्तिहाद की नफ़्सियात	30
जहन्नम की तरफ़	32
यकतरफ़ा रिपोर्टिंग	33
हाई प्रोफ़ाइल, लो प्रोफ़ाइल	35
एक दौर का मुशाहिदा	36
हक़ गोई व बेबाक़ी	38
हिजरत-ए-रसूल	39

कामयाबी का दुरुस्त तरीक़ा	41
ज़मीर यानी सेंसर	42
जुमा का दिन	45
जदीद इंसान की तलाश	48
ज़िक्रुल्लाह	50
एक इंटरव्यू	52
डायरी 1986	57
एक सवाल	66
ख़बरनामा इस्लामी मरकज़ — 285	66

ईद-उल-अज़हा का सबक

ईद-उल-अज़हा की क़ुर्बानी का हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की ज़िंदगी से बराए-रास्त ताल्लुक़ है। हज़रत इब्राहीम की ज़िंदगी से यह सबक़ मिलता है कि जब एक तरीक़ा नतीजा-ख़ेज़ साबित न हो रहा हो तो अपने मंसूबे की री-प्लैनिंग करनी चाहिए। मसलन, पैग़म्बर इब्राहीम ने उर (मौजूदा इराक़) से अपने पैग़ाम का आग़ाज़ किया। मगर जब वहाँ उनको कामयाबी नहीं मिली, बल्कि आग में डाल दिया गया, तो हज़रत इब्राहीम ने ऐसा बिल्कुल भी नहीं किया कि उसको ज़ुल्म के ख़ाने में डालकर शिकायत का तरीक़ा इख़्तियार करें, बल्कि उन्होंने अपने अमल की री-प्लैनिंग की। आख़िरकार इसका नतीजा मक्का की आबादी, और पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ और आपके साथियों के रूप में सामने आया।

ईद-उल-अज़हा दरअसल इस बात का सबक़ है कि अपने अमल की री-प्लैनिंग करो। खोए हुए को हर क़ीमत पर हासिल करने की कोशिश न करो, चाहे उसके लिए क़ुर्बानी की सतह पर अमल करना पड़े। खोए हुए को दुबारा उसी नहज पर पाना मुमकिन नहीं होता। इसलिए मोमिन का काम यह है कि वह कोशिश में नाकामी के बाद हालात का दुबारा मुताला करके अपने अमल की री-प्लैनिंग करे।

री-प्लैनिंग फ़ितरत का एक आम उसूल है। यह हर मामले में लागू होता है, चाहे वह मामला मज़हबी हो या सेक्यूलर। इंसान को हरगिज़ ऐसा नहीं करना चाहिए कि जो तरीक़ा कारगर साबित न हो, उसी को बार-बार आज़माता रहे। इसके बजाए, उसे अपने अमल की री-प्लैनिंग करनी चाहिए। यही इस दुनिया में कामयाबी का वाहिद तरीक़ा है। दरख़्त का मुशाहिदा बताता है कि अगर किसी शाख़ को बढ़ने से

कोई चीज़ रोकती है, तो वह अपना रुख़ बदलकर आगे बढ़ने लगती है। ट्रैफ़िक का भी आम उसूल यही है कि जब ड्राइवर देखता है कि आगे रास्ता बंद है, तो वह रास्ता बदलकर अपना सफ़र जारी रखता है।

मक्का में जब पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ के लिए नतीजा-रुख़ी अमल का मौक़ा ख़त्म हो गया, तो अल्लाह तआला ने आपको मदीना की तरफ़ हिजरत का हुक्म दिया। और फिर आहिस्ता-आहिस्ता सारी दुनिया में इस्लाम के लिए रास्ता खुल गया। इसी हक़ीक़त की तरफ़ पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ ने इशारा किया है:

> "मुझे एक बस्ती का हुक्म दिया गया है, वह तमाम बस्तियों को खा जाएगी। लोग उसको यसरिब कहते हैं, लेकिन वह मदीना है।" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1748)

पीसफ़ुल एक्टिविज़्म, वायलेंट एक्टिविज़्म

एक हदीस-ए-रसूल इन अल्फ़ाज़ में आई है—

"عَنْ عَائِشَةَ أَنَّ رَسُولَ اللهِ صَلَّى اللهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ قَالَ:
إِنَّ اللهَ رَفِيقٌ يُحِبُّ الرِّفْقَ، وَيُعْطِي عَلَى الرِّفْقِ مَا لَا
يُعْطِي عَلَى الْعُنْفِ، وَمَا لَا يُعْطِي عَلَى مَا سِوَاهُ"۔

(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2593)

यानी नबी ﷺ की ज़ौजा हज़रत आयशा बयान करती हैं कि पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ ने कहा: "बेशक अल्लाह नरम है, और नरमी को पसंद करता है, और नरमी पर वह सब कुछ अता करता है, जो वह

सख़्ती पर अता नहीं करता, और न इसके अलावा किसी और चीज़ पर अता करता है।”

एक रिवायत में यह इज़ाफ़ा है:

“وَيَرْضَاهُ، وَيُعِينُ عَلَيْهِ مَا لَا يُعِينُ عَلَى الْعُنْفِ”

यानी अल्लाह तआला नरमी से राज़ी होता है, और नरमी पर वह जिस तरह मदद करता है, ऐसी मदद वह सख़्ती पर नहीं करता।

(अल-मुअज़मुल कबीर लित-तबरानी, हदीस नंबर 852)

यह हदीस तरीक़-ए-कार के बारे में है। इसका मतलब यह है कि अल्लाह की मदद हमेशा पुर-अमन तरीक़-ए-कार पर आती है। हिंसात्मक तरीक़-ए-कार पर अल्लाह की मदद नहीं आती है। मज़ीद ग़ौर व फ़िक्र से मालूम होता है कि जब इंसान पुर-अमन अंदाज़ में अपना काम करता है, तो फ़ितरत के क़वानीन इंसान के मुवाफ़िक़ बन जाते हैं। इंसान को अपने काम में फ़रिश्तों की मदद हासिल हो जाती है। जब इंसान टकराव का रास्ता अपनाता है, तो ऐसा नहीं होता। टकराव का रास्ता हमेशा रिएक्शन पैदा करता है। इसके बरअक्स, पुर-अमन रास्ता रिएक्शन को ख़त्म कर देता है।

अल्लाह तआला नरमी को पसंद करता है, वह सख़्ती को पसंद नहीं करता। इसका सबब यह है कि नरमी या पुर-अमन तरीक़-ए-कार इख़्तियार करने की सूरत में मसला हल होता है, जबकि तशद्दुद का तरीक़ा इख़्तियार करने की सूरत में मसला हमेशा बढ़ जाता है। पीसफ़ुल तरीक़-ए-कार इख़्तियार करने का नतीजा यह होता है कि कोई नया मसला पैदा हुए बग़ैर मसला हल हो जाता है। इसके बरअक्स, तशद्दुद का तरीक़ा इख़्तियार करने की सूरत में कोई मसला हल नहीं होता। अलबत्ता नए-नए मसाइल पैदा होकर मक़सद के हुसूल को और ज़्यादा मुश्किल बना देते हैं।

क़ुरआन की चंद आयतें

क़ुरआन की सूरह आल-ए-इमरान की चंद आयतों का तर्जुमा यह है:

لَآيَاتٍ لِّأُولِي الْأَلْبَابِ

"आसमानों की पैदाइश में और रात-दिन के बारी-बारी आने में अक़्ल वालों के लिए बहुत निशानियाँ हैं।"

الَّذِينَ يَذْكُرُونَ اللهَ قِيَاماً وَقُعُوداً وَعَلَى جُنُوبِهِمْ

"जो खड़े और बैठे और अपनी करवटों पर अल्लाह को याद करते हैं, और आसमानों और ज़मीन की पैदाइश में फ़िक्र करते रहते हैं।"

رَبَّنَا مَا خَلَقْتَ هَذَا بَاطِلاً سُبْحَانَكَ فَقِنَا عَذَابَ النَّارِ

"ऐ हमारे रब, तूने यह सब बे-मक़सद नहीं बनाया, तू पाक है। पस तू हमको आग के अज़ाब से बचा।"

رَبَّنَا إِنَّنَا سَمِعْنَا مُنَادِياً يُنَادِي لِلْإِيمَانِ أَنْ آمِنُوا بِرَبِّكُمْ فَآمَنَّا

"ऐ हमारे रब, हमने एक पुकारने वाले को सुना जो ईमान की तरफ़ पुकार रहा था कि अपने रब पर ईमान लाओ, पस हम ईमान लाए।"

رَبَّنَا فَاغْفِرْ لَنَا ذُنُوبَنَا وَكَفِّرْ عَنَّا سَيِّئَاتِنَا وَتَوَفَّنَا مَعَ الْأَبْرَارِ

"ऐ हमारे रब, हमारे गुनाहों को बख़्श दे और हमारी बुराइयों को तू हमसे दूर कर दे और हमारा ख़ातमा नेक लोगों के साथ कर।"

رَبَّنَا وَآتِنَا مَا وَعَدْتَنَا عَلَى رُسُلِكَ

"ऐ हमारे रब, तूने जो वादे अपने रसूलों के ज़रियह हमसे किए हैं, उनको तू हमारे साथ पूरा कर।"

وَلَا تُخْزِنَا يَوْمَ الْقِيَامَةِ إِنَّكَ لَا تُخْلِفُ الْمِيعَادَ

"और क़यामत के दिन तू हमको रुस्वाई में न डाल। बेशक तू अपने वादे के ख़िलाफ़ करने वाला नहीं है।"

فَاسْتَجَابَ لَهُمْ رَبُّهُمْ أَنِّي لَا أُضِيعُ
عَمَلَ عَامِلٍ مِنْكُمْ مِنْ ذَكَرٍ أَوْ أُنْثَى

"उनके रब ने उनकी दुआ क़बूल फ़रमाई कि मैं तुम में से किसी का अमल ज़ाया करने वाला नहीं, ख़्वाह वह मर्द हो या औरत।"

بَعْضُكُمْ مِنْ بَعْضٍ فَالَّذِينَ هَاجَرُوا وَأُخْرِجُوا
مِنْ دِيَارِهِمْ وَأُوذُوا فِي سَبِيلِي وَقَاتَلُوا وَقُتِلُوا

"तुम सब एक-दूसरे की जिंस से हो, पस जिन लोगों ने हिजरत की और जो अपने घरों से निकाले गए और मेरी राह में सताए गए और लड़े और मारे गए।"

لَأُكَفِّرَنَّ عَنْهُمْ سَيِّئَاتِهِمْ وَلَأُدْخِلَنَّهُمْ جَنَّاتٍ تَجْرِي مِنْ تَحْتِهَا
الْأَنْهَارُ ثَوَاباً مِنْ عِنْدِ اللهِ وَاللهُ عِنْدَهُ حُسْنُ الثَّوَابِ

"मैं ज़रूर उनकी ख़ताएँ उनसे दूर कर दूँगा और उनको ऐसे बाग़ों में दाख़िल करूँगा जिनके नीचे नहरें बहती होंगी। यह उनका बदला है। अल्लाह के यहाँ और बेहतरीन बदला अल्लाह ही के पास है।" (3:190-195)

क़ुरआन की यह आयतें दीन को समझने के लिए बहुत ज़्यादा अहम हैं। इन आयतों में जिन-जिन बातों की तरफ़ इशारा किया गया है,

उनको यहाँ मुख़्तसर तौर पर नंबरवार दर्ज किया जा रहा है:

1. इन आयात से पहली बात यह मालूम होती है कि अल्लाह की मारिफ़त सिर्फ़ उन लोगों को मिलती है, जो अपनी अक़्ल को इस्तेमाल करें। आयत में 'औलुलअलबाब' का लफ़्ज़ है। इसका मतलब है — असहाब-ए-अक़्ल, यानी जो लोग अपनी अक़्ल को इस्तेमाल करके ज़मीन व आसमान की चीज़ों (creation) में ग़ौर करें। गोया कि मारिफ़त-ए-इलाही किसी जादुई तरीक़े से हासिल नहीं होती। मारिफ़त के हुसूल का ज़रिया सिर्फ़ एक है, और वह है अक़्ल को इस्तेमाल करके तख़्लीक़ी मज़ाहिर में ग़ौर व फ़िक्र करना।
2. दूसरी बात यह मालूम होती है कि जब किसी इंसान को ख़ुदा की मारिफ़त (realization) हासिल होती है, तो वह उसकी पूरी शख़्सियत का हिस्सा बन जाती है। वह हर हाल में उसके बारे में सोचता रहता है। इंसान एक फ़िक्री मख़्लूक़ है। कहा जाता है कि इंसान एक सोचने वाला हैवान (thinking animal) है। इंसान की सोच ही वह अमल है, जो उसकी शख़्सियत की तामीर करती है। रब्बानी सोच से रब्बानी इंसान बनता है और ग़ैर-रब्बानी सोच से ग़ैर-रब्बानी इंसान।
3. इस मारिफ़त का नतीजा यह होता है कि वह ज़िंदगी और काइनात का मक़सद, और उनके पीछे छिपी हुई हिकमत को दरियाफ़्त कर लेता है। वह यह जान लेता है कि ख़ुदा के ख़ालिक़ होने का यह लाज़मी नतीजा होना चाहिए कि आदमी ख़ुदा के सामने जवाबदेह हो। तख़्लीक़ और जवाबदेही (accountability) दोनों उसको एक हक़ीक़त के दो हिस्से नज़र आने लगते हैं। जिस ख़ुदा ने इंसान को पैदा किया है, वह लाज़िमन एक दिन

इंसान का हिसाब करेगा और उसके अमल के मुताबिक़ उसके लिए जज़ा व सज़ा का फ़ैसला करेगा।

4. इस मारिफ़त के नतीजे में इंसान के अंदर जो शऊर पैदा होता है, वह इस बात का ज़ामिन होता है कि वह हक़ के पहुँचाने को पहचान ले। हक़ के दाई को न पहचानने का वाहिद सबब यह है कि आदमी कंडीशनिंग का शिकार हो। मारिफ़त, आदमी को इस क़ाबिल बनाती है कि वह कंडीशनिंग से बाहर आकर चीज़ों को वैसा ही देख सके, जैसी वे हक़ीक़त में हैं। यह सलाहियत आदमी को इस क़ाबिल बना देती है कि वह पक्षपाती सोच से आज़ाद होकर किसी इंसान को पहचान ले। इस तरह, हक़ की मारिफ़त आदमी के लिए हक़ के दाई की मारिफ़त का यक़ीनी ज़रिया बन जाती है।

5. जब एक शख़्स को मारिफ़त वाली ज़िन्दगी हासिल होती है, तो उसके बाद उसका वह हाल होता है जिसको हदीस में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है— दुनिया मोमिन के लिए क़ैदख़ाना है (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2956)। ऐसा इसलिए होता है कि इस दुनिया में हक़ को जानने वाले लोगों को उन लोगों के बीच रहना पड़ता है जो हक़ को नहीं जानते। ख़ुदा-परस्त को ग़ैर-ख़ुदा-परस्तों के साथ रहना पड़ता है। आख़िरत-पसंद इंसान को उन लोगों के साथ रहना पड़ता है जिनका कन्सर्न सिर्फ़ दुनिया होती है। इस सूरत-ए-हाल की बुनियाद पर एक सच्चे मोमिन को दुनिया एक क़ैदख़ाने के मानिंद नज़र आने लगती है। उसकी सबसे बड़ी ख़्वाहिश यह होती है कि उसे ऐसे लोगों के बीच रहने का मौक़ा मिले जो हक़ को पहचान चुके हों। इसी समाज का नाम जन्नत है। जब किसी शख़्स को मारिफ़त हासिल होती है, तो वह अपने फ़ितरी तक़ाज़े के मुताबिक़ जन्नत का तलबगार

बन जाता है। यही मतलब है — “तवफ़्फ़ना मअल अब्रार” — यानी हमारा ख़ातिमा नेक लोगों के साथ कर।

6. “आतिना मा वअद्तना अला रुसुलिका” — इन अल्फ़ाज़ से मालूम होता है कि पैग़म्बरों के साथ अल्लाह का जो मामला होता है, उसमें पैग़म्बर के सच्चे उम्मती भी बराबर के शरीक हैं, दुनिया में भी और आख़िरत में भी। यह बिला-शुब्हा बहुत बड़ी बशारत है। लेकिन ख़ुदा की यह इनायत सिर्फ़ उन लोगों के लिए मुक़द्दर है, जो बग़ैर किसी शर्त के पैग़म्बर का एतिराफ़ करें और बग़ैर किसी शर्त के अपनी अमली ज़िन्दगी में उनकी पैरवी करें। अल्लाह तआला की यह सुन्नत जिस तरह पैग़म्बर के ज़माने के लोगों के लिए है, उसी तरह इस सुन्नत का ताल्लुक़ बाद के दौर के उन लोगों से भी है जो पैग़म्बर के मिशन को ज़िन्दा करने के लिए उठें और साथ देने वाले उनका साथ दें।

7. अगली आयत में आमिल के अमल का ज़िक्र है। अल्लाह तआला का यह हत्मी वादा है कि वह सच्चे आमिल के अमल को कभी ज़ाया नहीं करता। यह सुन्नत मर्दों के लिए भी है और औरतों के लिए भी। अल्लाह तआला की यह सुन्नत एक सच्चे मोमिन के लिए बिला-शुब्हा सबसे बड़ा सहारा है। हालात चाहे कितने ही सख़्त हों, अगर वह हक़ीक़तन अल्लाह के बताए हुए रास्ते पर है, तो अल्लाह की तरफ़ से उसके लिए अबदी तौर पर यह बशारत है — बेशक अल्लाह उन लोगों के साथ है जो परहेज़गार हैं और जो नेकी करने वाले हैं। (16:128)

8. इसके बाद क़ुरआन में चंद चीज़ों का ज़िक्र है — हिजरत, वतन से निकलना, अल्लाह के रास्ते में सताया जाना और क़िताल, यह चारों शर्तें लाज़िमन लफ़्ज़ी तौर पर मतलूब नहीं हैं, बल्कि मानवी

तौर पर मतलूब हैं। यानी इसका मतलब यह नहीं है कि अहल-ए-ईमान के साथ हर ज़माने में शक्ल के एतिबार से बिलकुल ऐसा ही वाक़िआ पेश आएगा — कि उनको अपना वतन छोड़ना पड़े, उन्हें अपने घरों से निकाला जाए, उन्हें जिस्मानी तौर पर सताया जाए, उन्हें जंग करनी पड़े। यह सब शर्तें हक़ीक़तन नहीं हैं, बल्कि इज़ाफ़ी हैं। क़दीम क़बाइली दौर (tribal age) में यह वाक़िआत शक्लन पेश आए, लेकिन मौजूदा ज़माना आज़ादी और डेमोक्रेसी का ज़माना है। अब इंसानी हुक़ूक़ (human rights) को आलमी तौर पर मान लिया गया है। अब भी सच्चे अहल-ए-ईमान के साथ यह तजुर्बात पेश आएँगे, मगर वह ब-एतिबार-ए-हक़ीक़त (spirit) होंगे, न कि ब-एतिबार-ए-सूरत।

मौत का सबक

मौत हर इंसान पर अचानक आती है। इस बिना पर इंसान मजबूर है कि मौत के मामले में ग़ैर यक़ीनी हालत में जिए। यह ग़ैर यक़ीनी हालत सिर्फ़ मौत के बारे में नहीं है, बल्कि ज़िंदगी के हर पहलू से मुताल्लिक़ है। इंसान को चाहिए कि वो फ़ितरत के इस क़ानून को क़बूल करे, और उसके मुताबिक़ अपनी ज़िंदगी की प्लैनिंग करे। वरना वह अपने आप को ऐसे नुक़सान से बचा नहीं सकता, जिसकी भरपाई कभी मुमकिन न हो।

मैदान का इंतिख़ाब

क़ुरआन में बताया गया है कि अल्लाह ने जब आदम और हव्वा को पैदा किया, तो उनको जन्नत में आबाद किया। अल्लाह ने फ़रमाया कि तुम पूरी जन्नत को इस्तेमाल कर सकते हो, लेकिन जन्नत का एक दरख़्त तुम्हारे लिए शजर-ए-ममनूआ (forbidden tree) की हैसियत रखता है। इसलिए तुम दोनों इस दरख़्त के पास मत जाना और उसका फल मत खाना, वरना तुम दोनों ज़ालिम हो जाओगे।

"وَلَا تَقْرَبَا هَٰذِهِ الشَّجَرَةَ فَتَكُونَا مِنَ الظَّالِمِينَ" (2:35)

"Do not approach this tree lest you become wrongdoers" (2:35)

यह क़िस्सा सिर्फ़ आदम और हव्वा का एक क़दीम रिवायती क़िस्सा नहीं, इसमें पूरी इंसानियत के लिए एक अबदी सबक़ मौजूद है। यह क़िस्सा आलामती तौर पर बताता है कि इंसान के बारे में अल्लाह का तख़्लीक़ी मंसूबा (creation plan of God) क्या है, और यह कि इस तख़्लीक़ी मंसूबे के मुताबिक़, हर औरत और हर मर्द का सबसे बड़ा मसला क्या है। उनको नाकामी से बचने के लिए इस दुनिया में किस तरह रहना चाहिए। मगर अमलन यह हुआ कि आदम और हव्वा ने उस ममनूआ दरख़्त का फल खा लिया। उनसे यह ग़लती सिर्फ़ एक दरख़्त के बारे में हुई थी, मगर अमली नतीजा यह हुआ कि वो पूरी जन्नत से महरूम हो गए।

आदम और हव्वा का यह क़िस्सा इंसान के बारे में ख़ालिक़ के मुक़र्रर किए गए एक अहम उसूल को बताता है। वो यह कि हर इंसान और हर इंसानी गिरोह के लिए एक "ममनूआ दरख़्त" (forbidden

tree) होता है। फ़र्द और जमात दोनों को चाहिए कि वो अपने इस "ममनूआ दरख़्त" को दरियाफ़्त करें और उससे कामिल तौर पर परहेज़ करें, वरना वो लाज़िमी तौर पर उसके बुरे अंजाम से दो-चार होंगे और फिर कोई चीज़ न होगी, जो उनको उस तबाहकुन अंजाम से बचाए।

अब इस मामले को इंसान के लिहाज़ से देखिए। इस दुनिया को बनाने वाले ने एक ख़ास मक़सद के तहत इसे बनाया है। वो यह कि यह दुनिया एक इम्तिहान का मैदान है। इस दुनिया में मुख़्तलिफ़ क़िस्म के मुवाफ़िक़ और नामुवाफ़िक़ हालात के दरमियान आदमी का इम्तिहान लिया जा रहा है। इस मक़सद के तहत इस दुनिया में हर औरत और मर्द को हर लम्हा कोई न कोई नाख़ुशगवार तजुर्बा पेश आता है। आदमी अपने मिज़ाज के एतिबार से मयार पसंद (idealist) है, मगर मौजूदा दुनिया में हर चीज़ ग़ैर मयारी है। इस बिना पर अमलन यह होता है कि आदमी अपनी बे-शऊरी की बिना पर मनफ़ी सोच (negative thinking) में मुब्तला हो जाता है। इस तरह वो अपने आप को जन्नत के लिए ग़ैर मुस्तहिक़ इंसान बना लेता है।

इस इम्तिहान में कामयाबी के लिए ज़रूरी है कि हर आदमी यह दरियाफ़्त करे कि समाजी ज़िंदगी में उसके लिए "ममनूआ दरख़्त" क्या है। उसे यह समझना चाहिए कि वो जिस "दरख़्त" को न पाने की वजह से मनफ़ी सोच में मुब्तला हो रहा था, वो दरअसल उसके लिए "ममनूआ दरख़्त" की हैसियत रखता था, और उसे हासिल करना उसके लिए फ़ायदे की बजाय नुक़सान का सबब बनता।

अफ़राद के बारे में यह त्रासदी पूरी तारीख़ में पेश आई है। तक़रीबन तमाम इंसानों का यह हाल हो रहा है कि वह तजुर्बात-ए-हयात के दौरान किसी न किसी एतिबार से मनफ़ी नफ़्सियात में मुब्तला हो जाते हैं। वह मनफ़ी सोच में जीते हैं और मनफ़ी सोच में मरते हैं।

किसी शख़्स का यह हाल है कि वह अपने ख़्वाहिशात की तकमील चाहता था, मगर यह तकमील उसको नहीं मिल पाती। नतीजा यह होता है कि वह मायूसी की हालत में जीता है, और मायूसी की हालत में इस दुनिया से चला जाता है।

किसी ने आइडियल इंसाफ़ को एक निशाना बनाया, मगर वह जद्दोजहद के बावजूद आइडियल इंसाफ़ न पा सका। नतीजा यह हुआ कि वह फ्रस्ट्रेशन का शिकार होकर रह गया।

किसी ने यह चाहा कि वह इसी दुनिया में अपनी जन्नत तामीर करे, मगर सारी कोशिश के बावजूद वह अपनी मतलूब जन्नत की तामीर न कर सका। नतीजा यह हुआ कि वह सिर्फ़ नाउम्मीदी का एक केस बनकर रह गया।

अफ़राद के बारे में यह त्रासदी पूरी तारीख़ में नज़र आती है। इसका मुश्तरक सबब यह है कि हर इंसान ने अपने लिए एक ऐसी चीज़ को हासिल करना चाहा, जो ख़ालिक़ के मंसूबे के मुताबिक़, उसके लिए “ममनूआ दरख़्त” की हैसियत रखता था। इस बिना पर वह उसके लिए क़ाबिल-ए-हुसूल ही न था। इस सूरत-ए-हाल ने इंसानी तारीख़ को अमलन इंसानी तमन्नाओं का एक वसीअ क़ब्रिस्तान बना दिया।

यही मामला क़ौमों का है। तारीख़ में बार-बार यह हादसा पेश आ रहा है कि क़ौमें या क़ौमों के लीडर अपने लिए ऐसा निशाना बना लेते हैं, जिसे पाना असल में उनके लिए मुमकिन नहीं होता। नतीजा यह होता है कि वह जो करते हैं, वह अपने अंजाम के एतिबार से उनके लिए काउंटर प्रोडक्टिव (उल्टा अंजाम) साबित होता है। वह बड़े-बड़े हौसलों के साथ ज़िंदगी का आग़ाज़ करते हैं और आख़िर में वह मायूसी का शिकार होकर इस दुनिया से चले जाते हैं।

सिकंदर-ए-आज़म 336 क़ब्ल मसीह (B.C.) में यूनान का

बादशाह बना। उसने अपने लिए एक नाक़ाबिल-ए-हुसूल पॉलिटिकल निशाना बनाया, यानी यह कि वह फ़ौजी ताक़त के ज़रिए सारी दुनिया को फ़तह करे। मगर अमलन यह हुआ कि वह सिर्फ़ 33 साल की उम्र में शदीद मायूसी की हालत में मर गया।

हिटलर 1933 में जर्मनी का चांसलर मुक़र्रर हुआ। मगर उसने अपने लिए एक नाक़ाबिल-ए-हुसूल सियासी निशाना बनाया, यानी पूरे यूरोप में जर्मनी का इक़्तेदार क़ायम करे। मगर बड़े-बड़े फ़ौजी इक़दामात के बावजूद वह अपना निशाना पूरा न कर सका। यहाँ तक कि 1945 में सख़्त मायूसी की हालत में उसने ख़ुदकुशी कर ली, जबकि उसकी उम्र अभी सिर्फ़ 56 साल थी।

इसी तरह की एक मिसाल कम्युनिस्ट पार्टी की है। कम्युनिस्ट पार्टी ने 1917 में रूस में इक़्तेदार हासिल किया। उसके बाद उसने अपने लिए एक नाक़ाबिल-ए-हुसूल निशाना बनाया, यानी कम्युनिस्ट आइडियॉलॉजी को सारी दुनिया में एक्सपोर्ट करना। इस मक़सद के लिए उसने बहुत फ़ौजी कार्रवाईयाँ कीं। इसी सिलसिले का एक वाक़िआ यह था कि उसने 1979 में अफ़ग़ानिस्तान में अपनी फ़ौजें दाख़िल कर दीं, मगर उसका नतीजा उल्टा में निकला। 1991 में ख़ुद कम्युनिस्ट एम्पायर (Soviet Union) टूट गया, आलमी नक़्शे पर वह सुपरपावर की हैसियत से बाक़ी नहीं रहा।

इसी नौइयत की एक मिसाल अमरीका है। उसने भी यही किया कि अपने लिए एक हासिल न होने निशाना बनाया। अमरीका के पॉलिटिकल लीडर बराक ओबामा को दूसरी बार सदर-ए-अमरीका के लिए मुंतख़ब किया गया। इस सिलसिले में वॉशिंगटन में 22 जनवरी 2013 को एक ख़ुसूसी तक़रीब का इंतेज़ाम किया गया। इस मौक़े पर सदर ओबामा ने एक तक़रीर की। इस तक़रीर में उन्होंने अमरीका की ग्लोबल पॉलिसी को दोहराते हुए कहा कि — अमरीका सारी दुनिया में डेमोक्रेसी को

अपनी सपोर्ट देता रहेगा: “We will support democracy from Asia to Africa, from the Americas to the Middle East.” मगर वाक़ियात बताते हैं कि अमरीका की यह पॉलिसी उसके लिए पूरी तरह काउंटर प्रोडक्टिव (उल्टा अंजाम) साबित हुई है। दूसरी आलमी जंग के बाद अमरीका एक मज़बूत मुल्क की हैसियत से उभरा था। अमरीका की अर्थव्यवस्था को एक मज़बूत अर्थव्यवस्था समझा जाता था, लेकिन अब इक्कीसवीं सदी में अमरीका ने अपनी यह हैसियत खो दी है। अमेरिका की इस फॉरेन पॉलिसी का उसे यह नुक़सान उठाना पड़ा कि दुनिया की नज़र में अमेरिका की सुपरपावर वाली हैसियत कमज़ोर पड़ गई।

इस मामले में ख़ुद मिल्लत-ए-मुस्लिमा का हाल भी यही है। मौजूदा ज़माने के मुस्लिम रहनुमाओं ने और उन रहनुमाओं की पैरवी करते हुए तक़रीबन तमाम मुसलमानों ने यह फ़र्ज़ कर लिया कि दुनिया की तमाम क़ौमें उनकी दुश्मन हैं, हर जगह उनके ख़िलाफ़ साज़िश जारी है, उनकी हुकूमतों को तोड़ा जा रहा है, उनके सियासी दबदबे को ख़त्म किया जा रहा है। इस सोच के तहत तमाम दुनिया के मुसलमान ख़याली दुश्मनों के ख़िलाफ़ ख़याली जिहाद में मशग़ूल हो गए। इस जिहाद में अमलन पूरी मिल्लत-ए-मुस्लिमा शामिल है — कुछ लोग सोच, हिमायत और प्रचार की सतह पर इस जिहाद (passive jihad) का हिस्सा बने हुए हैं, और कुछ लोग अमली तौर पर इसमें शामिल हैं (active jihad)। मगर इस मामले में मिल्लत-ए-मुस्लिमा का अंजाम भी वही हो रहा है जो दूसरी क़ौमों का हो रहा है। यानी लगभग दो सौ साल की जद्दोजहद और क़ुर्बानियों के बावजूद उनका मक़सद हासिल नहीं हुआ, बल्कि यह हुआ कि मिल्लत-ए-मुस्लिमा की तबाही इस हद तक बढ़ गई कि इसकी भरपाई अब मुमकिन नहीं। इसकी एक मिसाल फ़िलिस्तीन है। फ़िलिस्तीन में 1948 में अरब और ग़ैर-अरब मुसलमानों की हिमायत से इसराइल के ख़िलाफ़ जिहाद शुरू हुआ, मगर नतीजा बर-अक्स

सूरत में निकला। 1948 में जब जिहाद-ए-फ़िलिस्तीन शुरू हुआ, उस वक़्त फ़िलिस्तीन का लगभग आधा हिस्सा, यरूशलम (मस्जिद-ए-अक़्सा और बैतुल-मुक़द्दस, वग़ैरा) समेत, अरबों के पास था। लेकिन आज अरबों के पास फ़िलिस्तीन का इतना कम हिस्सा रह गया है, जो अमलन न होने के बराबर है।

यह सबक देने वाली घटनाएँ, जो मुसलमानों और दूसरी क़ौमों के साथ पेश आ रही हैं, इन सबकी एक ही साझा वजह है, और वह है फ़ितरत के उस क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी, जिसका ज़िक्र ऊपर "ममनूअ दरख़्त" के अल्फ़ाज़ में किया गया है। हर क़ौम एक ऐसी मंज़िल की तरफ़ दौड़ रही है, जहाँ पहुँचना उसके लिए मुमकिन नहीं है।

इस आलमी मसले का हल सिर्फ़ यही है कि हर फ़र्द और हर क़ौम अपने मामले का अज़सर-ए-नौ जायज़ा ले। वो ख़ालिक़ के मंसूबे को समझे, वो ग़ैर जानिबदाराना सोच के तहत यह दरियाफ़्त करे कि ख़ालिक़ के मंसूबे के तहत उसका ममनूआ दरख़्त क्या है, और फिर अपनी पहली ग़लती का एतिराफ़ करते हुए अपने अमल की नई मंसूबा बंदी करें। वो ममनूआ मैदान को छोड़े और जो मैदान उसके लिए खुला हुआ है, उसमें नए सिरे से अपनी जद्द-ओ-जहद का आग़ाज़ करें। यही कामयाबी का वाहिद राज़ है। इसके बग़ैर इस दुनिया में किसी के लिए भी कामयाबी का हुसूल मुमकिन नहीं, न किसी फ़र्द के लिए और न ही किसी क़ौम के लिए। इस उसूल का ख़ुलासा मुख़्तसर तौर पर यही है — अपने "ममनूअ दरख़्त" को दरियाफ़्त करना और उससे दूरी इख़्तियार करते हुए अपने अमल का मंसूबा बनाना।

हासिल-ए-तजुर्बा

मेरी उम्र 66 साल हो गई। अगर मुझे बताना हो कि मेरी पूरी ज़िंदगी के मुताला और तजुर्बे का आख़िरी हासिल क्या है, तो मैं कहूँगा कि — अल्लाह तआला ने इंसान की सूरत में एक मिस्टर नथिंग (Mr. Nothing) पैदा किया और उसके ऊपर "थिंग" (thing) का परदा डाल दिया।

इंसान के पास ब-ज़ाहिर दिमाग़ है, इल्म है, ताक़त है, असबाब व वसाइल हैं। मगर यह सब का सब ज़ाहिरी परदा है। इस परदे के अंदर दाख़िल होकर देखिए तो मालूम होगा कि इंसान की किसी चीज़ की कोई हक़ीक़त नहीं। इसमें शक नहीं कि इंसान का एक अलैहदा वुजूद है। उसका यह अलैहदा वुजूद दुनिया से लेकर आख़िरत तक बाक़ी रहेगा। इंसान का सारा मामला पूरी तरह अल्लाह की ज़ात पर निर्भर है। दुनिया में भी अगर वह कुछ पाता है, तो वह अल्लाह के दिए से पाता है। और आख़िरत में भी वह जो कुछ पाएगा, अल्लाह के दिए से पाएगा।

इंसान के पास इरादा है, मगर इरादे के मुताबिक़ नतीजा ज़ाहिर करने की उसके अंदर ताक़त नहीं। इंसान के पास फ़िक्र है, मगर हालात पर उसका कंट्रोल नहीं। उसको चाहने का इख़्तियार है, मगर उसको करने का कोई इख़्तियार नहीं। (डायरी, 26 फ़रवरी 1990)

ख़ुदा को पाना

इस वक़्त मेरी गुफ़्तगू का मौज़ू ख़ुदा और ख़ुदा का एक होना है। यह मौज़ू बिला-शुब्हा मेरा सबसे ज़्यादा पसंदीदा मौज़ू है। ज़मीन व

आसमान गवाह हैं कि मैं सबसे ज़्यादा तौहीद के मौज़ू पर सोचता हूँ। मैं सबसे ज़्यादा ख़ुदा की बातों में डूबा रहता हूँ।

क़ुरआन में आया है कि:

"إِذَا ذُكِرَ اللهُ وَجِلَتْ قُلُوبُهُمْ" (8:2)

"जब अल्लाह का ज़िक्र आता है, तो उनके दिल दहल उठते हैं।"

और:

"فَلَمَّا تَجَلَّى رَبُّهُ لِلْجَبَلِ جَعَلَهُ دَكًّا وَخَرَّ مُوسَى صَعِقاً" (7:143)

"जब अल्लाह ने पहाड़ पर अपनी तजल्ली की, तो उसको रेज़ा-रेज़ा कर दिया और मूसा बेहोश होकर गिर पड़े।"

ख़ुदा तो वह है जहाँ ज़ुबानें बंद हो जाती हैं, फिर ख़ुदा के बारे में बोला जाए तो क्या बोला जाए। ख़ुदा तो वह है जिसके सामने आते ही निगाहें चकाचौंध हो जाती हैं। फिर उसके मुशाहिदे को बयान किया जाए तो किस तरह बयान किया जाए। ख़ुदा तो वह है कि जब वह तजल्ली करता है, तो जहाँ वह अपनी तजल्ली करता है, उसको टुकड़े-टुकड़े कर देता है (अल-आराफ़, 7:143)। फिर कहाँ से वह दिल लाया जाए जो ख़ुदा जैसी हस्ती का चर्चा कर सके।

ख़ुदा मेरे लिए सिर्फ़ एक रस्मी अक़ीदा नहीं, ख़ुदा मेरी दरियाफ़्त है। एहसान के दर्जे में ख़ुदा को मैंने देखा है। ख़ुदा को मैंने छुआ है। ब-ख़ुदा मेरी मिसाल सहरा-ए-सीना के उस पहाड़ की है, जिस पर ख़ुदा उतरा और उसने उसकी हस्ती के रेज़े-रेज़े कर दिए। ऐसे एक इंसान के लिए ख़ुदा पर बोलना कोई आसान काम नहीं। ऐसे एक इंसान के लिए ख़ुदा की हम्द और तारीफ़ करनी आम तक़रीरों की तरह सिर्फ़ एक तक़रीर कर देने की बात नहीं।

ग़ालिबन 25 साल पहले की बात है। उस वक़्त मैं आज़मगढ़ (UP) में था। वहाँ एक साहब, शाह नसीर अहमद ने मुझसे पूछा — “क्या इंसान ख़ुदा को देख सकता है?” मेरी ज़बान से फ़ौरन यह अल्फ़ाज़ निकले — “क्या आप ने अभी तक ख़ुदा को नहीं देखा?” इसमें कोई शक नहीं कि ख़ुदा सूरज और चाँद से ज़्यादा नुमायाँ है। यह आँख इसी लिए दी गई है कि वह ख़ुदा को देखे। यह दिमाग़ इसी लिए दिया गया है कि वह ख़ुदा की मारिफ़त हासिल करे। ब-ख़ुदा वह आँख बे-नूर है जिसको ख़ुदा दिखाई नहीं देता। वह इंसान बे-दिमाग़ है, जो यह कहता है कि उसने ख़ुदा को नहीं पाया, या यह कि ख़ुदा को पाया नहीं जा सकता।

ख़ुदा बिला-शुब्हा इतना बड़ा है कि वह हमारे मुशाहदे में नहीं समाता। मगर बिला-शुब्हा वह तमाम चीज़ों से ज़्यादा हमसे क़रीब है। मौजूदा दुनिया में हम ख़ुदा को उसकी ज़ात में नहीं देख सकते। मगर ख़ुदा को उसकी सिफ़ात में हम हर जगह देखते हैं और हर वक़्त देख सकते हैं। मौजूदा दुनिया में यही ख़ुदा को देखना है, यही ख़ुदा को पाना है।

कार को कारख़ाने का इंजीनियर बनाता है। इंजीनियर कार में हर वक़्त बैठा हुआ नहीं होता। मगर जिस शख़्स ने कार में सिर्फ़ कार को देखा, उसने कुछ नहीं देखा। कार को देखने वाला वह है, जो कार को देखते ही उसके इंजीनियर को भी देख ले। इसी तरह इंसान ख़ुदा को भी देख सकता है। अगर आप ने सूरज में सिर्फ़ सूरज को देखा, तो आपने कुछ नहीं देखा। सूरज को देखने वाला वह है, जिसने सूरज में ख़ुदा के रोशन चेहरे को देख लिया हो। जिसने पहाड़ में सिर्फ़ पहाड़ को देखा, उसने कुछ नहीं देखा। पहाड़ को देखने वाला वह है, जिसने पहाड़ में ख़ुदा की अज़मतों को पा लिया हो। ख़ुदा कोई दूर की चीज़ नहीं। वह आसमान की वुसअतों में ज़ाहिर हुआ है। वह चिड़ियों के चहचहे में बोल रहा है। वह फूलों की नज़ाकत में मुस्कुरा रहा है। वह हवाओं के झोंके में आपको छू रहा है।

यह एक हक़ीक़त है कि ख़ुदा हर तरफ़ और हर जगह है। वह हमसे बिल्कुल अलग है, इसी के साथ वह हमसे इंतिहाई क़रीब है। फिर भी जो इंसान ख़ुदा को न देखे, वह अंधा है। इसके बावजूद जो इंसान ख़ुदा को न पाए, वह महरूमी की उस इंतिहा पर है, जिसके आगे महरूमी का कोई दर्जा नहीं।

ख़ुदा को पाना ऐसा ही है जैसे अपने आपको पाना। कौन है जो अपने आपको पाए हुए न हो। इसलिए कोई शख़्स भी ऐसा नहीं हो सकता जो ख़ुदा को पाना चाहे, फिर भी वह उसको न पा सके। जो शख़्स अपनी आँखें बंद कर ले, वह सूरज को नहीं देख सकता। ऐसे शख़्स के चारों तरफ़ सूरज अपनी बेपनाह रोशनी के साथ मौजूद होगा, मगर वह सूरज को नहीं देखेगा। इसी तरह ख़ुदा हर लम्हा आदमी के चारों तरफ़ मौजूद है। मगर जिस शख़्स ने अपनी दूर अंदेशी को धुंधला कर चुका हो, वह कभी ख़ुदा को देखने की ख़ुशनसीबी हासिल नहीं कर सकता। (तक़रीर बमुक़ाम भोपाल, 19 अप्रैल 1986)

इंशा अल्लाह

इस्लाम की तालीमात में से एक तालीम यह है कि आदमी जब किसी काम के बारे में अपने इरादे का इज़हार करे, तो उसके साथ इंशा अल्लाह भी ज़रूर कहे (अल-कहफ़, 18:23)। मसलन, एक शख़्स दिल्ली से बंबई जाने का इरादा करता है, तो वह इस तरह न कहे कि “कल मैं बंबई जाऊँगा”, बल्कि यूँ कहे कि “इंशा अल्लाह कल मैं बंबई जाऊँगा।”

यह कलिमा गोया इस हक़ीक़त-ए-वाक़िआ का एतिराफ़ है कि

मेरी चाह सिर्फ़ उस वक़्त पूरी होगी, जबकि अल्लाह की चाह भी उसमें शामिल हो जाए। यह अपने चाहने में अल्लाह के चाहने को मिलाना है, अपने इरादे के साथ अल्लाह के इरादे को शामिल करना है। असल यह है कि इंसान इरादा करता है और उसके मुताबिक़ कोशिश करता है। मगर किसी कोशिश की तकमील सिर्फ़ उस वक़्त मुमकिन होती है, जब उसके साथ अल्लाह की रज़ामंदी भी शामिल हो जाए। इसी को अरबी में इस तरह कहा गया है कि कोशिश मेरी तरफ़ से है और उसकी तकमील अल्लाह की तरफ़ से है। इस एतिबार से ख़ुदा और बंदे का मामला गोया कोगवील (cogwheel) का मामला है। एक पहिया ख़ुदा का है और दूसरा पहिया इंसान का। जब दोनों के दन्त-चक्र एक-दूसरे में मिल जाते हैं, उसके बाद ज़िंदगी की मशीन चल पड़ती है। इंसान अगर ऐसा करे कि ख़ुदा के पहिए से अलग होकर अपना पहिया चलाना चाहे, तो ब-ज़ाहिर हरकत के बावजूद वह बेफ़ायदा होगा। क्योंकि पूरी मशीन के चलने के लिए ज़रूरी था कि ख़ुदा के पहिए का दन्त (फ़ितरत का क़ानून) भी इंसान के पहिए के साथ शामिल हो।

इंशा-अल्लाह का कलिमा ब-एतिबार-ए-हक़ीक़त एक दुआ है। इसका मतलब यह है कि इंसान अपने काम का आग़ाज़ करते हुए अल्लाह तआला से दरख़्वास्त करता है कि वह इंसान के काग (दन्त-चक्र) में अपना काग (दन्त-चक्र) मिला दे, ताकि ज़िंदगी की मशीन चल पड़े और अपने मतलूब अंजाम तक पहुँच जाए। इंशा-अल्लाह कहना गोया ज़िंदगी के सफ़र में मालिक-ए-कायनात को अपने साथ लेना है। और जिस आदमी का यह हाल हो कि ख़ुद मालिक-ए-कायनात उसका हमसफ़र हो जाए, उसको मंज़िल तक पहुँचने से कौन रोक सकता है।

इस्लामी सरगर्मी

कुछ मुसलमान अगर इस्लाम के नाम पर जमा होते हों, या इस्लाम के नाम पर कुछ सरगर्मी दिखा रहे हों, तो यही उनके लिए इस्लाम पर क़ायम होने की काफ़ी अलामत नहीं है। इस क़िस्म की सरगर्मी (activity) लोगों को एक मिल्ली तस्कीन दे सकती है, लेकिन वह इस्लाम के मक़सद पर क़ायम होने के लिए काफ़ी नहीं।

इस्लाम के नाम पर सरगर्मी वह है, जो एक बामक़सद सरगर्मी हो। मसलन, इस्लाम के नाम पर आप किसी जगह जमा हो जाएँ, और इस्लाम के नाम पर तक़रीरें सुनें, तो उससे आपको रब्बानी टेक अवे मिलना चाहिए (अल-अनफ़ाल, 8:2)। जिस तक़रीर या तहरीर से आपको रब्बानी टेक अवे न मिले, वह इस्लाम की सरगर्मी नहीं थी, बल्कि किसी और मक़सद के तहत की गई सरगर्मी थी, जिसको आपने ग़लती से इस्लाम की सरगर्मी समझ लिया।

इस्लाम की सरगर्मी वह है, जो लोगों को मुतअय्यन मक़सद-ए-हयात दे। जिससे लोगों के दिलों में अल्लाह की मोहब्बत पैदा हो। जिससे लोग लौटें, तो वह अल्लाह की याद और आख़िरत की फ़िक्र का जज़्बा लेकर लौटें। उनके अंदर तमाम इंसानों की ख़ैरख़्वाही का जज़्बा बेदार हो जाए। इस्लाम के नाम पर ऐसी सरगर्मी जो ख़ुदा और आख़िरत के ज़िक्र से ख़ाली हो, वह कुछ और हो सकती है, लेकिन वह हक़ीक़ी मानी में इस्लामी सरगर्मी नहीं।

हर चीज़ को जाँचने का एक मयार होता है। इस्लाम के नाम पर की गई सरगर्मी का मयार यह है कि उससे ख़ुदा का ताल्लुक़ बढ़े, और आख़िरत-रुख़ी स्पिरिट बेदार हो। जो सरगर्मी इस्लाम के नाम पर की गई हो, लेकिन जो लोग उसमें शिरकत करके वापस लौटें, और उनके पास

मज़कूरा क़िस्म का टेक अवे न हो, वह अपनी हक़ीक़त के एतिबार से कोई और सरगर्मी थी, जिसको उन्होंने ग़लतफ़हमी से इस्लामी सरगर्मी समझ लिया।

इस्लामी तक़रीर या इस्लामी तहरीर वह है, जिससे लोगों में ख़ुदा और आख़िरत की स्पिरिट बेदार हो, जिससे लोगों में जन्नत का शौक़ बढ़े, और वह आख़िरत की पकड़ के बारे में ज़्यादा हस्सास हो जाएँ। जो लोगों के लिए ख़ुदा और आख़िरत की ग़िज़ा देने वाला साबित हो।

ख़ुदा की रहमत

बारिश के मौसम में बारिश न हो, तो किसान परेशान हो जाते हैं, क्योंकि बारिश ही पर खेती का दारोमदार है। बारिश से खेतों में फ़सल उगती है और साल भर की रोज़ी हासिल होती है। बारिश न हो, तो किसानों के खेत वीरान हो जाएँ, हमको अपनी ख़ुराक के लिए ग़ल्ला न मिले।

इसी तरह एक और बारिश है। यह अल्लाह का वह फ़ज़्ल है, जिससे नेक अमल की तौफ़ीक़ हासिल होती है, जिससे हमारे ईमान की ज़मीन पर इस्लामी किरदार की खेतियाँ उगती हैं। अल्लाह की तौफ़ीक़ न मिले, तो हमारे ईमान की ज़मीन सूखी पड़ी रह जाए और उससे नेक आमाल की वह फ़सल न उगेगी, जो जन्नत का दरवाज़ा खोलने का ज़रिया बनता है।

तौफ़ीक़ की अहमियत इस्लामी किरदार पैदा करने में उसी तरह है, जैसे बारिश की अहमियत खेतों में फ़सल उगाने के लिए।

जब बादलों वाली बारिश रुकती है, तो किसान बेहद परेशान हो जाते हैं। इसी तरह जब अमल की तौफ़ीक़ वाली बारिश रुके, तो मोमिन बंदा को बेचैन हो जाना चाहिए। उसे अपना जायज़ा लेना चाहिए कि आख़िर क्यों उस पर तौफ़ीक़-ए-इलाही की बारिश रुक गई। ऐसा क्यों है कि उसके अंदर वह जज़्बात नहीं उमड़ रहे हैं, जो अल्लाह को पसंद आने वाले अमल पर उभारने का ज़रिया बनते हैं।

जब आपको एक अच्छी नमाज़ पढ़ने की तौफ़ीक़ मिलती है, तो दरहक़ीक़त वह रहमत-ए-इलाही की बारिश की एक बूँद होती है, जो आप पर टपकती है। जब आपको ख़ालिस अल्लाह की ख़ातिर रोज़ा रखना और हज करना नसीब होता है, जब आप ख़ुदा की राह में ख़र्च करने की ख़ुशी हासिल करते हैं, तो यह सब भी अल्लाह की उसी बारिश के छींटे होते हैं, जो आपको अल्लाह की तौफ़ीक़ से पहुँचते हैं।

इसी तरह जब अल्लाह की याद से आपका दिल सरशार हो उठता है, जब आपकी आँखें अल्लाह की राह में रोने की तौफ़ीक़ पाती हैं, जब आपकी ज़िंदगी में दर्द के वह लम्हात आते हैं, जो आपको अल्लाह के ख़ौफ़ व मोहब्बत से तड़पा देने वाले हों, तो यह सब भी उसी अनदेखी बारिश का फ़ज़्ल होता है, जो अल्लाह की तरफ़ से आप पर बरसता है।

जब आप अपने भाई की कोई ख़िदमत करते हैं, जब दूसरे के दुख से आपको दुख और दूसरे के सुख से आपको सुख होता है, जब आप दिल की सच्चाई के साथ उन कामों में से कोई काम करते हैं, जिनको बंदों के हुक़ूक़ की अदायगी का नाम दिया गया है, तो यह सब उसी ख़ुदाई बारिश के छींटे होते हैं, जो आप पर उसकी रहमत-ए-ख़ास से बरसते हैं।

हम सब मुसलमान हैं और यह ख़ुशी की बात है कि हम मुसलमान हैं। मगर याद रखें, मुसलमान होना या मुसलमान घर में पैदा होना सिर्फ़

यह मानी रखता है कि आपको ईमान व इस्लाम की ज़मीन हासिल है। मगर हर किसान जानता है कि सिर्फ़ ज़मीन का मालिक होना काफ़ी नहीं। बल्कि इसके साथ यह भी ज़रूरी है कि उस ज़मीन को पानी की सहूलतें हासिल हों।

रेगिस्तान में हर तरफ़ ज़मीन ही ज़मीन होती है, मगर वह खेती के लिए बेकार है। वहाँ हरी-भरी फ़सल के बजाय हर वक़्त रेत उड़ती रहती है। क्यों? इसलिए कि वहाँ पानी का एक क़तरा नहीं।

एक किसान के लिए सिर्फ़ यह बात काफ़ी नहीं है कि उसके पास खेत हैं, चाहे वह कितने ही ज़्यादा क्यों न हों। खेत से फ़सल उगाने के लिए ज़रूरी है कि पानी उस खेत तक पहुँचे। सूखा खेत उसी वक़्त लहलहाती हुई फ़सल की सूरत में बदलता है, जब वह पानी से सींचा जाए।

इसी तरह हमारे लिए सिर्फ़ यह बात काफ़ी नहीं कि हम ईमान व इस्लाम को मानने का ज़बानी दावा करें। इसके साथ लाज़िमी तौर पर यह भी ज़रूरी है कि हमारी इस्लामी ज़मीन पर ख़ुदा की तौफ़ीक़ की बारिश भी हो रही हो।

हमारे दिल में अल्लाह से ख़ौफ़ व मोहब्बत की वह बूँदें टपकें, जो आदमी के अंदर रब्बानी हलचल पैदा करती हैं और उसे नेक काम करने पर उभारती हैं।

हम में से हर शख़्स को यह देखने की ज़रूरत है कि ख़ुदा की इस बारिश में उसे हिस्सा मिल रहा है या नहीं। उस पर रहमतों का वह फ़ज़्ल बरस रहा है या नहीं, जिससे ख़ुदा के पसंदीदा आमाल का शौक़ पैदा होता है।

अगर इस रूहानी बारिश की बूँदें आप पर टपक रही हैं, तो ख़ुदा का शुक्र अदा करें, क्योंकि यह सबसे बड़ी नेमत है, जो इस दुनिया में किसी को मिलती है। और अगर इस बारिश के छींटे आपकी रूह को ताज़गी

नहीं पहुँचा रहीं हों, तो आपको इससे ज़्यादा बेचैनी होनी चाहिए, जितना कोई किसान उस वक़्त बेचैन होता है, जब बादल उसकी ज़मीन पर बारिश बरसाने से रुक गए हों।

क्योंकि बादलों वाली बारिश किसी को सिर्फ़ एक साल के ग़ल्ले से महरूम करती है, जबकि तौफ़ीक़-ए-अमल की बारिश का रुकना आदमी को उस सख़्त तरीन अंदेशे में मुब्तला कर देता है कि वह आख़िरत की अबदी ज़िंदगी में घाटा उठाने वालों में से हो जाए।

कोई आदमी नमाज़, रोज़ा और इस तरह के दूसरे आमाल कर रहा है, मगर उनकी हैसियत उसके लिए ऐसी है, जैसे कुछ बेजान रस्म हो, जिसको वक़्त-ब-वक़्त अदा कर लिया जाए, तब उसे मुतमइन नहीं होना चाहिए। क्योंकि वही अमल इस्लामी अमल है, जिसके साथ आदमी के दिल की धड़कनें शामिल हो जाएँ, जिसके अंदर उसकी रूह की तड़प घुलमिल गई हो। जो अमल इंसान की ज़िंदगी का सिर्फ़ एक बेजान हिस्सा बनकर रह जाए, वह बस एक बेफ़ायदा रस्म है, जिसकी कोई क़ीमत न दुनिया में है, न आख़िरत में।

हम में से हर शख़्स को इस एतिबार से अपना जायज़ा लेना चाहिए। अगर बारिश बरसाने वाले बादल रुक जाएँ, तो हम इस्तिस्क़ा (बारिश के लिए पढ़ी जाने वाली नमाज़) की नमाज़ पढ़ते हैं। लोग पानी हासिल करने के दूसरे तरीक़ों की तरफ़ दौड़ना शुरू करते हैं। इसी तरह तौफ़ीक़-ए-अमल की बारिश रुकने पर आपको चौकन्ना हो जाना चाहिए। आपको ख़ुदा से दुआ और इल्तिजा करनी चाहिए कि वह आपको अपनी नेमत-ए-तौफ़ीक़ से महरूम न करे।

अगर आपको ज़िंदा इबादत की तौफ़ीक़ न मिल रही हो, अगर ख़ुदा की राह में ख़र्च करने का शौक़ आपसे रुख़्सत हो गया हो, अगर दूसरों का भला देखकर आप ख़ुश न होते हों, अगर अपने भाइयों की

ख़िदमत करने का जज़्बा आपके अंदर न उभरता हो, अगर आप अपने फ़ायदे के पीछे दूसरे का नुक़सान भूल जाते हों, अगर अपने साहिब-ए-मामला के साथ इंसाफ़ करना आपको गवारा न होता हो, किसी से शिकायत पैदा होने के बाद अगर आप उसे माफ़ करने पर राज़ी न होते हों — अगर इस तरह की बातें हों, तो समझ लें कि आपके ईमान की ज़मीन सूखी पड़ी हुई है। आप पर अल्लाह अपनी तौफ़ीक़ की बारिश नहीं बरसा रहा है। ख़ुदा की रहमतों से महरूमी ने आपके अंदर इस्लाम के पौधे को ख़ुश्क कर दिया है।

इसी तरह आपको उस वक़्त भी बेचैन हो जाना चाहिए, जब आप अपना यह हाल पाएँ कि आप उन्हीं दीन के कामों में रग़बत रखते हों, जिनसे आपकी दुनिया को कोई नुक़सान न हो, जिनमें आपके माद्दी मुफ़ादात पूरी तरह महफ़ूज़ रहते हैं, जिनमें सस्ती क़ीमतों पर जन्नत के दरवाज़े खुलते हुए नज़र आते हैं, जिनमें कुछ किए बिना करने का तमग़ा मिल जाता है, जिनमें अल्फ़ाज़ बोलकर अमल का क्रेडिट हासिल होता है। इस क़िस्म के "दीन" की तरफ़ लपकना और नफ़्स को दबाने और जज़्बात की क़ुर्बानी देने वाले दीन से बे-परवाह होना दीनदारी की हालत नहीं, बल्कि ग़फ़लत की हालत है।

अगर आपका यह हाल हो कि आप उन्हीं दीन के कामों की तरफ़ दौड़ते हों, जिनमें दुनियावी नफ़ा मिलने वाला हो, जिनमें शोहरत और इज़्ज़त की चाशनी हो, जिनमें आपकी अवामी तस्वीर में इज़ाफ़ा होता हो, जिनमें आप अपने को नुमायाँ करने के मौक़े पा रहे हों, जिनमें अमल की क़ीमत दुनियावी सूरत में वसूल होती हो, जिनमें दीन के काम की क़ीमत लोगों की सराहना की सूरत में मिल रही हो — आप दुनियावी पहलू रखने वाले दीन के काम में तो ख़ूब तेज़ी दिखाएँ और जिस दीन के काम में कोई दुनियावी चाशनी न हो, उससे बे-रग़बत रहें — तो यह इस बात का सबूत है कि आप ख़ुदा की तौफ़ीक़ में हिस्सा

पाने से महरूम हैं। क्योंकि दौलत और इज़्ज़त वाले दीन की तरफ़ दौड़ना दीन के नाम पर अपने नफ़्स की तरफ़ दौड़ना है, न कि हक़ीक़तन ख़ुदा के दीन की तरफ़ दौड़ना।

इन तमाम हालात में आपको मुतमइन होने का मौक़ा नहीं। आपको बेताब होकर ख़ुदा की तरफ़ रुजू करना चाहिए। आपको ख़ुदा की बारिश-ए-रहमत को अपनी तरफ़ माइल करना चाहिए, क़ब्ल इसके कि आपका सूखा हुआ पौधा ख़ुदा के बाग़ से उखाड़कर फेंक दिया जाए।

जन्नत में अहल-ए-जन्नत का एक मशग़ला यह होगा कि वे कलिमात-ए-अल्लाह का मुताला करें, वह कलिमात-ए-अल्लाह को दरियाफ़्त करें, और फिर कलिमात-ए-अल्लाह को क़लमबंद करें। यह रब्बानी इंसान कौन होंगे? यह वे लोग होंगे, जो दुनिया के अंदर क़ुरआन के अल्फ़ाज़ में अल्लाह (7:69) और कलिमात-ए-अल्लाह (18:109) की सोच में जीने वाले हों। ऐसे लोगों को इकट्ठा करके जो दुनिया बनेगी, उसी का नाम जन्नत है। वह एक नया दौर-ए-तहज़ीब (age of civilization) होगा। यहाँ की हर चीज़ आला मयार की होगी। यहाँ की सोसाइटी आला सोसाइटी होगी। यहाँ रब्बानी मारिफ़त की अनफोल्डिंग के आला इदारे होंगे।

इत्तिहाद की नफ़्सियात

किसी बड़े काम को अंजाम देने के लिए इत्तिहाद (एकता) और इत्तिफ़ाक़ (आपसी तालमेल) बेहद ज़रूरी है। मगर इत्तिहाद कभी मुकम्मल मानों में पैदा नहीं होता। यानी यह कि टीम या ग्रुप के तमाम अफ़राद की सोच एक हो, और इस बुनियाद पर उनके अंदर इत्तिहाद

क़ायम हो जाए। फ़ितरत के क़ानून के मुताबिक़ ऐसा होना मुमकिन नहीं। इत्तिहाद हमेशा प्रैक्टिकल विज़डम की बुनियाद पर क़ायम होता है, न कि मुकम्मल विज़डम (absolute wisdom) की बुनियाद पर।

असल यह है कि इत्तिहाद कभी पूरी तरह एक जैसी राय की बुनियाद पर क़ायम नहीं होता, बल्कि इत्तिहाद उस वक़्त क़ायम होता है, जब लोगों के सामने एक मुश्तरक निशाना हो, और उस साझा निशाने के हुसूल के लिए मुख़्तलिफ़ लोग अपनी ज़ाती राय को अलग रखकर मुश्तरक निशाने की बुनियाद पर अमलन एकजुट हो जाएँ। यानी अपनी-अपनी राय में फ़र्क़ होने के बावजूद साझा निशाने की ख़ातिर लोगों का अमलन एकजुट हो जाना।

हर इंसान की अपनी एक अलग शख़्सियत होती है। हर इंसान का देखने और सोचने का नज़रिया अलग-अलग होता है। इसलिए इज्तिमाई जद्दोजहद में कभी ऐसा नहीं हो सकता कि अफ़राद के दरमियान कुल्ली तौर पर राय का इत्तिहाद हो जाए। बल्कि लोगों के दरमियान इत्तिहाद इस सोच की बुनियाद पर होता है कि किसी अज़ीम मक़सद के लिए इज्तिमाई कोशिश की जाए। यह उस वक़्त मुमकिन है, जब लोग इन्फ़िरादी सतह पर अपनी राये को अपनी ज़ात की हद तक महदूद रखें, और इज्तिमाई जद्दोजहद के मामले में सब मिलकर एक निशाने के लिए कोशिश करें। अमली मानों में इसी का नाम इत्तिहाद है। यही तरीक़ा मुमकिन है, और यही तरीक़ा फ़ितरत के क़ानून के मुताबिक़ है।

एक पुरानी कहानी में बताया जाता है कि एक शख़्स के कई बेटे थे। जब उसकी मौत का वक़्त आया, तो उसने अपने बेटों को बुलाया, और उनको एक बटी हुई रस्सी दी कि इसको तोड़ो। लड़के उस रस्सी को तोड़ नहीं पाए। फिर उसने रस्सी को खोल दिया, और हर बेटे को रस्सी की एक-एक लड़ी दी। अब हर एक ने आसानी से उसको तोड़

दिया। उसके बाद बाप ने कहा कि देखो, अगर तुम एकजुट रहोगे, तो कोई तुमको तोड़ नहीं पाएगा, लेकिन अगर तुम अलग हो जाओगे, तो कोई भी शख़्स तुमको आसानी से तोड़ डालेगा।

जहन्नम की तरफ़

बाद के ज़माने के बारे में एक लंबी रिवायत हदीस की मुख़्तलिफ़ किताबों में आई है। उसका एक जुज़ अल-बुख़ारी के अल्फ़ाज़ में यह है:

“دُعَاةٌ عَلَى أَبْوَابِ جَهَنَّمَ، مَنْ أَجَابَهُمْ إِلَيْهَا قَذَفُوهُ فِيهَا”

यानी उस वक़्त कुछ पुकारने वाले होंगे जहन्नम के दरवाज़े पर, जो लोग भी उनकी बात मानेंगे, वे उनको जहन्नम में फेंक देंगे।

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 7084)

यह हदीस उम्मत-ए-मुस्लिमा के दौर-ए-ज़वाल के बारे में है। यानी दौर-ए-ज़वाल में उम्मत-ए-मुस्लिमा में जो नई बातें पैदा होंगी, उनमें से एक बात यह होगी कि कुछ लोग ब-ज़ाहिर इस्लाम का नाम लेंगे मगर वे लोगों को इस्लाम के नाम पर ग़ैर-इस्लाम की तरफ़ पुकारेंगे। उनकी यह पुकार ब-ज़ाहिर इस्लाम के नाम पर होगी, मगर हक़ीक़त के एतिबार से उनकी मंज़िल जहन्नम होगी। जो उनकी पुकार पर लब्बैक कहेगा, वह आख़िरकार अपने आपको जहन्नम के दरवाज़े पर पाएगा।

असल यह है कि दौर-ए-ज़वाल में उम्मत ऐसा नहीं करेगी कि वह इस्लाम को छोड़ दे। बल्कि यह होगा कि उम्मत अमलन दूसरी क़ौमों की तरह एक क़ौम बन जाएगी। लेकिन उम्मत के लोग अपनी क़ौमी सरगर्मियों के लिए ऐसे अल्फ़ाज़ बोलेंगे, जो ब-ज़ाहिर इस्लामी

डिक्शनरी का हिस्सा मालूम हों, लेकिन हक़ीक़त के एतिबार से वे क़ौमी डिक्शनरी का हिस्सा होंगे। मसलन, वे अपनी क़ौमी लड़ाई को जिहाद का नाम देंगे, वे क़ौमी सरगर्मियों को इस्लामी सरगर्मियाँ कहेंगे, वे अपनी क़ौमी सियासत को इस्लामी ख़िलाफ़त कहेंगे, वग़ैरह। मौजूदा ज़माने में इस क़िस्म की ग़ैर-इस्लामी पुकार की बहुत-सी मिसालें पैदा हुई हैं।

मौजूदा दौर में इन्हीं क़िस्म की बातों को अमलन उम्मत-ए-मुस्लिमा का दीन का बुनियादी मक़सद क़रार देकर उसके लिए कोशिशें की जा रही हैं, मगर यह ग़ैर-इस्लाम को इस्लाम का नाम देना है। हर वह बात, जो क़ुरआन व हदीस के वाज़ेह दलील से साबित न हो, दीन के नाम पर उसको फैलाना बातिल है। इस क़िस्म की बे-बुनियाद बातें अमलन न सिर्फ़ लोगों को हक़ीक़ी दीन से दूर कर देती हैं, बल्कि उनके अंदर नफ़रत और टकराव का जज़्बा भी उभारती हैं, जो बज़ात-ए-ख़ुद एक फ़ित्ना-अंगेज़ और नापसंदीदा रवैया है।

यकतरफ़ा रिपोर्टिंग

आज-कल जिस मुसलमान से बात कीजिए, वह हमेशा एक ही बात को दोहराएगा, और वह मुसलमानों पर ज़ुल्म की बात है। अगर उनसे आगे बात की जाए, तो वह अख़बार की ख़बरों (या सोशल मीडिया पर मौजूद किसी अनजान इंसान की ऐसी वीडियो, जिसकी बात की तस्दीक़ न हुई हो) का हवाला देगा। मगर यह सब एकतरफ़ा ख़बर पहुँचाने की मिसालें हैं। मीडिया ऐसी इंडस्ट्री है, जो चुनी हुई ख़बरें दिखाती है (selective news)। मीडिया सिर्फ़ उन बातों को चुनता

है, जिनमें कोई सनसनीख़ेज़ पहलू हो। ऐसी हालत में मुसलमानों को चाहिए कि वह इस क़िस्म की ख़बरों को क़बूल करने में सख़्त एहतियात का तरीक़ा इख़्तियार करें। क़ुरआन के मुताबिक़, ऐसी ख़बरों को मान लेना दुरुस्त नहीं है, बल्कि राय बनाने से पहले ग़ैर जानिबदाराना अंदाज़ में उनकी तहक़ीक़ कर लेनी चाहिए।

क़ुरआन में अल्लाह तआला ने यह हुक्म इन अल्फ़ाज़ में दिया है:

”يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِنْ جَاءَكُمْ فَاسِقٌ بِنَبَإٍ فَتَبَيَّنُوا أَنْ تُصِيبُوا قَوْماً بِجَهَالَةٍ فَتُصْبِحُوا عَلَى مَا فَعَلْتُمْ نَادِمِينَ“ (49:6)

यानी ऐ ईमान वालो, अगर कोई फ़ासिक़ तुम्हारे पास ख़बर लाए, तो तुम अच्छी तरह तहक़ीक़ कर लो, कहीं ऐसा न हो कि तुम किसी गिरोह को नादानी से नुक़सान पहुँचा दो, फिर तुमको अपने किए पर पछताना पड़े। मुफ़स्सिर इब्ने जरीर ने इसकी तफ़्सीर इन अल्फ़ाज़ में की है: जल्दी न करो, पहले यह तहक़ीक़ कर लो कि यह बात दुरुस्त है या नहीं। (तफ़्सीर-उत-तबरी, जिल्द 21, सफ़हा 349)

पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ ने हज़रत अली से फ़रमाया था: “जब तुम्हारे पास दो आदमी मुक़द्दमा लेकर आएँ, तो पहले वाले के हक़ में फ़ैसला न करो, जब तक दूसरे का भी बयान न सुन लो, तब तुम बेहतर तरीक़े से फ़ैसला कर सकोगे।” (सुनन तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 1380)

यकतरफ़ा रिपोर्टिंग का तरीक़ा बिला-शुब्हा ख़िलाफ़-ए-इस्लाम अमल है। मगर मौजूदा ज़माने में यकतरफ़ा रिपोर्टिंग का अंदाज़ बहुत ज़्यादा आम है। यहाँ तक कि जब कोई मुसलमान मिल्ली जोश में एक ख़बर फैला रहा होता है, तो उसे यह एहसास नहीं होता कि वह यकतरफ़ा रिपोर्टिंग की ग़लती कर रहा है।

हाई प्रोफ़ाइल, लो प्रोफ़ाइल

क़ुरआन में पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ के तरीक़-ए-कार को सबसे आला तरीक़-ए-कार बताया गया है। इसी हक़ीक़त को क़ुरआन में उसवा-ए-हसनह कहा गया है (33:21)। उसवा-ए-हसनह गोया सबसे ज़्यादा असरदार प्लानिंग का नमूना है।

अमेरिकी राइटर डॉक्टर माइकल हार्ट (पैदाइश 1932) ने 1978 में अपनी किताब “द हंड्रेड” शाया की। इस किताब में उसने पूरी तारीख़ के कामयाब-तरीन इंसानों की फ़ेहरिस्त तैयार की है। इसमें माइकल हार्ट ने पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ को तारीख़ का सबसे कामयाब इंसान बताया है। लेकिन यह कामयाबी आपने किस तरीक़-ए-कार को इख़्तियार करके हासिल की, यह हक़ीक़त इस किताब से मालूम नहीं होती। मैंने इस मसले पर ग़ौर किया, तो मेरी समझ में यह बात आई कि पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ के तरीक़-ए-कार का अगर ख़ुलासा किया जाए, तो शायद वह यह होगा — लो प्रोफ़ाइल में काम करना।

पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ ने अपनी पूरी ज़िंदगी में लो प्रोफ़ाइल का तरीक़ा इख़्तियार का प्लान इस तरीक़े से किया। लो-प्रोफ़ाइल में काम करने का मतलब यह है कि इंसान अपने काम की योजना ऐसे तरीक़े पर बनाए, जिसमें झगड़े और टकराव की नौबत न आए — यानी प्लैनिंग इस तरह ख़ामोश अंदाज़ में करना कि फ़रीक़-ए-सानी इससे बिल्कुल बे-ख़बर रहे, और काम इस तरह जारी रहे कि फ़रीक़-ए-सानी उस वक़्त बाख़बर हो पाए, जब काम अमलन अपनी कामयाबी की मंज़िल तक पहुँच चुका हो।

इसका एक अमली नमूना यह है कि पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ ने 8 हिजरी में जब मक्का की तरफ़ मार्च किया, तो यह सफ़र इंतिहाई

ख़ुफ़िया अंदाज़ में किया। यहाँ तक कि सफ़र से पहले आपने अल्लाह तआला से यह दुआ की थी: "ऐ अल्लाह, जासूसों और ख़बरों को क़ुरैश से रोक दे, यहाँ तक कि अचानक हम उनके शहर पहुँच जाएँ।"

(सीरत-इब्ने-हिशाम, जिल्द 2, सफ़हा 397)

यह मक्का में दाख़िले की प्लैनिंग थी, न कि फ़त्ह-ए-मक्का का अमल।

इस दुनिया में कामयाब तरीक़-ए-कार सिर्फ़ एक है, और वह है लो प्रोफ़ाइल में काम करना। इस तरीक़-ए-कार में किसी की तरफ़ से कोई रिएक्शन पैदा नहीं होता, और आख़िरी वक़्त तक काम करने का मौक़ा मिलता है।

एक दौर का मुशाहिदा

पासपोर्ट के मुताबिक़, मेरी पैदाइश 1 जनवरी 1925 की है। मैंने यह पूरा ज़माना देखा है। इसे तीन दौरों में बाँटा जा सकता है: ब्रिटिश दौर, आज़ादी के बाद का दौर जो बहुत जल्द ग़ैर-काँग्रेसी मुसलमानों का दौर बन गया, और तीसरा दौर, जिसे मुस्लिम नज़रिए से एंटी-बीजेपी दौर कहना सही होगा।

यह तीनों दौर मुस्लिम लीडरों की बहुत-सी कोशिशों और सरगर्मियों के बावजूद बेनतीजा रहे। इन सरगर्मियों का कोई मुसबत नतीजा सामने नहीं आया। अब पूरी उम्मत अमलन उस दौर में है, जिसको 'ब्लाइंड ऐली' कहा जा सकता है। मैं अपनी ज़िंदगी के उस मुक़ाम पर हूँ, जहाँ से आगे कोई चौथा दौर देखना शायद मेरे लिए मुक़द्दर नहीं। मेरी अपनी समझ के मुताबिक़, पूरी उम्मत में कोई एक

शख़्स भी नहीं, जो ब-ज़ाहिर मुसबत सोच की बुनियाद पर उम्मत की तामीरी मंसूबा-बंदी करे।

ऐसे अफ़राद तो बहुत हैं, जो बड़े-बड़े अल्फ़ाज़ बोलते हैं। लेकिन अगर जायज़ा लिया जाए, तो किसी के पास हक़ीक़ी मानों में कोई लाइन ऑफ़ ऐक्शन नहीं। इनके पास जज़्बाती रद्द-ए-अमल (reaction) होता है, लेकिन इनके पास होशमंदी के साथ किया हुआ कोई मंसूबा नहीं। मैं समझता हूँ कि पूरी उम्मत के लिए अब वह वक़्त आ गया है कि वह क़ुरआन की इस आयत के मुताबिक़ अमल करें, जिसका तर्जुमा यह है: "ऐ ईमान वालो, तुम सब मिलकर अल्लाह के सामने तौबा करो, ताकि तुम कामयाब हो जाओ।" (24:31)

मैं अपने अल्फ़ाज़ में यह कहूँगा कि मुसलमानों को क़ुरआन व हदीस की रोशनी में ग़ौर करना चाहिए। अब वह वक़्त आ गया है कि वह अपने मामले की री-प्लैनिंग करें। री-प्लैनिंग रसूल अल्लाह ﷺ की एक अज़ीम सुन्नत है। इस्लाम के दौर-ए-अव्वल की बे-मिसाल कामयाबी इसी री-प्लैनिंग का नतीजा थी। यह री-प्लैनिंग मुसलमानों की आम सोच के बरअक्स, टकराव के मैदान से हटकर तामीरी मंसूबा-बंदी के मैदान में एनर्जी लगाने की थी। हिजरत-ए-मदीना और सुल्ह-ए-हुदैबिया इसकी रोशन मिसालें हैं। इसी सुन्नत को सामने रखते हुए, आज मुसलमानों को भी चाहिए कि वह टकराव और रद्द-ए-अमल के माहौल से पीछे हटकर तामीरी अमल की तरफ़ मुतवज्जेह हों, न कि बे-फ़ायदा टकराव में अपनी ताक़त ज़ाया करते रहें।

हदीस में है: "इंसान की अच्छी दीनदारी में यह बात शामिल है कि वह ऐसे काम से बचे, जिसका कोई फ़ायदा न हो।"

(जामे-अत-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2317)

हक़ गोई व बेबाक़ी

आज-कल बहुत से लोग एक लफ़्ज़ बोलते हैं, वह है हक़ गोई व बेबाक़ी — यानी सच बोलना और निडर होकर बात कहना। बिला-शुब्हा यह एक ग़ैर-मुफ़ीद काम है। जो लोग इस टाइटल के साथ लिखते और बोलते हैं, वह इल्म और इल्मी ज़ौक़ से बिल्कुल बे-ख़बर हैं।

जिस चीज़ को हक़ गोई व बेबाक़ी कहा जाता है, वह दरअसल रिएक्शन का दूसरा नाम है, और रिएक्शन का तरीक़ा सिर्फ़ मसाइल में इज़ाफ़ा करता है, न कि मसाइल को कम करता है। अमली एतिबार से देखा जाए, तो इस तरह के बेबाक़ाना इज़हार-ए-ख़याल का कोई फ़ायदा नहीं। सही रवैया यह है कि सूरत-ए-हाल का गहराई के साथ मुताला करके मौक़ों को दरियाफ़्त किया जाए, और लोगों को बताया जाए कि मसाइल के बावजूद कौन से मौक़े मौजूद हैं, जिनको इस्तेमाल करके तरक़्क़ी का सफ़र जारी रखा जा सकता है।

हक़ गोई व बेबाक़ी के अल्फ़ाज़ अपने सतही रवैयह पर पर्दा डालने के लिए होते हैं। यह उन लोगों का काम है, जो आला अदब की तख़्लीक़ नहीं कर सकते। जो लोग इस क़िस्म की चीज़ों को लिखें, और जो लोग इस क़िस्म की चीज़ों को पढ़ें, वह दोनों अपने वक़्त को ज़ाया करने वाले लोग हैं। वह जानते नहीं कि आला ज़ौक़ किस चीज़ का नाम है। इस क़िस्म का अदब बिला-शुब्हा एह्तेजाज़ और चीख़-ओ-पुकार के लिए वजूद में आता है। यह बिला-शुब्हा वक़्त का ज़ाया करना है, इसके सिवा और कुछ नहीं।

मैं समझता हूँ कि जो लोग लिखना न जानते हों, उनके लिए ज़्यादा बेहतर काम यह है कि वह दो रकात नमाज़ पढ़कर लोगों के लिए दुआ

करें। वह ख़ुद अपनी शख़्सियत में कमियों को दरियाफ़्त करें, और उसकी इस्लाह की कोशिश करें।

सच बोलना यह है कि आप ज़ेर-ए-बहस मौज़ू का इल्मी मुताला करें, इस सिलसिले में ठोस दलाइल जमा करें, और फिर यह जानने की कोशिश करें कि इल्मी ज़ौक़ क्या चीज़ है। इसके बाद पॉज़िटिव अंदाज़ में मज़ामीन लिखें, जिससे लोगों को फ़ायदा पहुँचे। आम तौर पर जिस चीज़ को हक़ गोई व बेबाक़ी कहा जाता है, वह रद्द-ए-अमल (reaction) होता है, न कि हक़ गोई व बेबाक़ी।

हिजरत-ए-रसूल

रसूल अल्लाह ﷺ को रिसालत 610 ई० में मिली। तेरह साल के बाद मक्का से हिजरत करके आप मदीना गए। यह हिजरत पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ की एक सुन्नत है। इस सुन्नत को अगर लफ़्ज़ बदलकर कहें, तो वह तरीक़-ए-कार की री-प्लैनिंग थी — यानी मक़सद को हासिल करने के लिए, नाकाम रास्ते को छोड़कर एक नई और बेहतर मंसूबा बंदी करना।

यह प्लैनिंग इतनी कामयाब हुई कि थोड़ी मुद्दत के बाद आपका मिशन पूरे अरब में फैल गया। अपने मिशन के लिए पहली प्लैनिंग रसूल अल्लाह ﷺ ने मक्का के हालात को देखकर की थी। लेकिन मक्का के हालात में रसूल अल्लाह ﷺ ने जो प्लैनिंग की थी, वह अहल-ए-क़ुरैश की सख़्त मुख़ालिफ़त का शिकार हो गई।

उसके बाद आपने मदीना की बुनियाद पर दूसरी प्लैनिंग की। इस दूसरी प्लैनिंग के बाद भी ब-ज़ाहिर कुछ दिक्क़तें पेश आईं। लेकिन

बहुत जल्द यह प्लैनिंग कामयाब साबित हुई, और इस्लाम मुख़्तसर मुद्दत में फ़तह मुबीन (अल-फ़तह, 48:1) तक पहुँच गया।

जो लोग आपके साथ अपने वतन को छोड़कर मदीना पहुँचे, आम तौर पर उनको 'मुहाजिर' और 'अंसार' की इस्तलाहों में बयान किया जाता है। लेकिन अगर हम सेक्यूलर ज़बान में बात करें, तो वह मुहाजिर अहल-ए-ईमान का घर-बार छोड़कर आने वाले (diaspora) थे, और अंसार वह लोग थे जिन्होंने इस घर-बार छोड़कर आने वालों की मदद की। तारीख़ बताती है कि बड़े-बड़े कारनामे उन लोगों ने अंजाम दिए, जो डायस्पोरा से ताल्लुक़ रखते थे या जिन्होंने उनका साथ दिया। मसलन, अमरीका उन अफ़राद की मेहनत का नतीजा है, जो डायस्पोरा थे। इसकी वजह यह है कि जब तारिक़ीन-ए-वतन अपने मुल्क को छोड़कर किसी नए इलाके में बसते हैं, तो वह उन तकल्लुफ़ाना सोच से आज़ाद हो जाते हैं, जो समाजी रिवायतों के नाम पर ज़माने के साथ आगे बढ़ने में रुकावट बन जाती हैं। नया माहौल उनके अंदर एक नया जोश और अज़्म पैदा कर देता है। वह हर काम पूरी लगन के साथ करते हैं, यहाँ तक कि कामयाबी की मंज़िल तक पहुँच जाएँ।

इसी तरह का एक वाक़िया इस्लामी हिजरत के बाद मदीना में पेश आया। हिजरत के बाद नए मदीना में एक कसीर तादाद उन लोगों की हो गई, जो अपने वतन को छोड़कर यहाँ आबाद हुए थे। उनके अंदर नया अज़्म व होसला था। इस बिना पर यूँ लगता था कि नया मदीना हीरोज़ (heroes) की बस्ती बन गया है। इसी का नतीजा था कि जो बस्ती पहले सादा तौर पर यसरिब थी, वह इंसानी तारीख़ में एक नए आग़ाज़ का सरचशमा बन गई।

कामयाबी का दुरुस्त तरीक़ा

हर इंसान कामयाबी चाहता है, मगर क़ुरआन में बताया गया है कि कामयाबी का हुसूल दुरुस्त तरीक़े से होना चाहिए, न कि ग़लत तरीक़े से। इस सिलसिले में क़ुरआन का एक हुक्म इन अल्फ़ाज़ में आया है:

"يَا أَيُّهَا النَّاسُ كُلُوا مِمَّا فِي الْأَرْضِ حَلَالًا طَيِّبًا وَلَا تَتَّبِعُوا
خُطُوَاتِ الشَّيْطَانِ إِنَّهُ لَكُمْ عَدُوٌّ مُبِينٌ" (2:168)

यानी लोगो, ज़मीन की चीज़ों में से हलाल और पाकीज़ा चीज़ें खाओ और शैतान के क़दमों पर मत चलो, बेशक वह तुम्हारा खुला हुआ दुश्मन है।

क़ुरआन की इस आयत में बताया गया है कि इंसान को चाहिए कि वह रिज़्क़ के मामले में हलाल का तरीक़ा इख़्तियार करे। यहाँ यह रहनुमाई महदूद तौर पर सिर्फ़ खाने-पीने के बारे में नहीं है, बल्कि इसमें रोज़मर्रा की ज़िंदगी के उसूल बताए गए हैं। इसका मतलब यह है कि इंसान आज़ाद है कि वह अपने लिए कामयाबी हासिल करे, लेकिन इंसान को वही तरीक़ा इख़्तियार करना चाहिए जो हलाल और तय्यिब हो। वह हरगिज़ ऐसे तरीक़े को इख़्तियार न करे, जो अल्लाह के क़ायम किए हुए हुदूद के मुताबिक़ ग़ैर हलाल और ग़ैर तय्यिब हो। इसी तरह, इंसान को अपने ज़ेहन में ऐसी सोच को जगह नहीं देनी चाहिए, जो ग़ैर मुज़क्का हो। मसलन, अगर एक इंसान को यह महसूस हो कि उसे या उसकी क़ौम को किसी दूसरे से नुक़सान पहुँच रहा है, तो उसे चाहिए कि वह अपने आपको मनफ़ी (negative) सोच से बचाए, ताकि वह अद्ल व तक़्वा की हुदूद से बाहर न निकल जाए। (अल-माइदा, 5:8)

ज़िंदगी की इस अहम हक़ीक़त को क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है:

"لَا خَيْرَ فِي كَثِيرٍ مِنْ نَجْوَاهُمْ إِلَّا مَنْ أَمَرَ بِصَدَقَةٍ أَوْ
مَعْرُوفٍ أَوْ إِصْلَاحٍ بَيْنَ النَّاسِ وَمَنْ يَفْعَلْ ذَلِكَ ابْتِغَاءَ
مَرْضَاتِ اللهِ فَسَوْفَ نُؤْتِيهِ أَجْرًا عَظِيمًا" (4:114)

यानी उनकी अकसर सरगोशियों में कोई भलाई नहीं। भलाई वाली सरगोशी सिर्फ़ उसकी है, जो सदक़ा करने को कहे या किसी नेक काम के लिए कहे या लोगों में सुलह कराने के लिए कहे। जो शख़्स अल्लाह की खुशी के लिए ऐसा करे, तो हम उसे बड़ा अज्र अता करेंगे।

ज़मीर यानी सेंसर

दौर-ए-जदीद का एक पहलू यह है कि हम ऑटोमैटिक सिस्टम के दरमियान रहते हैं। यह ऑटोमैटिक सिस्टम सेंसर के ज़रिए काम करता है। जैसे हमारी मौजूदगी का पता लगाकर दरवाज़ा खोलना, धुआँ या आग का पता लगाकर सायरन बजाना, गैरेज के दरवाज़ों को उस वक़्त खोलना जब गाड़ी दरवाज़े के क़रीब हो। यह सब और इसके अलावा दीगर बहुत से ऑटोमैटिक काम सेंसरों की वजह से मुमकिन होते हैं। आप अपने घर, दफ़्तर और कारोबार वग़ैरह में मुख़्तलिफ़ क़िस्म के सेंसरों का इस्तेमाल कर सकते हैं, जो हमारी ज़िंदगी को आसान बनाने के लिए काम करते हैं। सेंसर क्या है? यह एक आला है, जो किसी जिस्मानी हरकत को पहचानकर उसके मुताबिक़ नतीजा ज़ाहिर करता है:

“A sensor is a device that detects changes in its environment and sends information about those changes to another device or system. A sensor is like a sense organ — just as your skin feels heat or cold, a sensor ‘feels’ or senses things like temperature, light, movement, sound, or pressure.”

इंसानी जिस्म पर ग़ौर किया जाए, तो इंसानी जिस्म में भी सेंसर लगे हुए हैं, जो आपके जिस्म के अंदर और बाहर जारी एक-एक हरकत को महसूस करके उसकी ख़बर आपके दिमाग़ तक पहुँचाते हैं, जिस बिना पर आप उनको जान पाते हैं। आम बोलचाल में उनको हवास-ए-ख़मसा (senses) कहा जाता है। उनके नाम यह हैं:

- देखना - सुनना - सूँघना - ज़ाएक़ा - छूना

अगर यह हवास-ए-ख़मसा (पाँच इंद्रियाँ) न हों, तो इंसान को बेशुमार क़िस्म की मुश्किलात का सामना करना पड़े। एक ख़ातून का मुझे इल्म है। उनकी सूँघने की कुव्वत ख़त्म हो गई थी। इसकी वजह से वह बहुत ज़्यादा परेशान रहती थीं। किचन में खाना जल जाए या कहीं आग लग जाए, तो उनको इसका बिल्कुल इल्म नहीं हो पाता था।

लेकिन अल्लाह तआला ने इंसान के जिस्म में एक और सेंसर रखा है — यानी अच्छाई और बुराई को पहचानने का सेंसर। इस सेंसर को ज़मीर कहा जाता है। ग़ालिबन इसी ज़मीर को क़ुरआन में ‘नफ़्स-ए-लव्वामा’ कहा गया है (75:2)। ज़मीर इंसान के लिए ख़ुदाई गाइड है। वह हर मौक़े पर इंसान को अलार्म देता है कि वह क्या करे और क्या न करे। लेकिन यह रहनुमाई ख़ामोश ज़बान में होती है। अगर आदमी सही वक़्त पर इस आवाज़ को सुन ले, तो वह फ़ौरन इंसान की रहनुमाई के लिए मुतहर्रिक हो जाता है, लेकिन अगर इंसान फ़ौरन मुतहर्रिक न हो, तो वह इंसान को उसके हाल पर छोड़ देता है।

दुनिया की ज़िंदगी में बार-बार आदमी पर ग़ैर-रब्बानी इंटरेस्ट ग़ालिब आ जाता है, और वह अपने ज़मीर के ख़िलाफ़ चलने लगता है। यह रविश ज़मीर को धीरे-धीरे मुर्दा बना देती है। जैसा कि एक हदीस में है: रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: "बन्दा जब कोई गुनाह करता है, तो उसके दिल पर एक स्याह नुक़्ता लग जाता है। अगर वह तौबा कर ले और बाज़ आ जाए और इस्तिग़फ़ार करे, तो उसका दिल साफ़ हो जाता है। और अगर दोबारा गुनाह की तरफ़ लौट आया, तो वह सियाही ज़्यादा हो जाती है। यहाँ तक कि उसके सारे दिल पर चढ़ जाती है। यही वह (गुनाह का) ज़ंग है, जिसका ज़िक्र क़ुरआन मजीद(83:14) में इन अल्फ़ाज़ में किया गया है: 'हरगिज़ नहीं, बल्कि उनके बुरे कामों से उनके दिलों पर ज़ंग लग गया'।" (सुनन अत-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 3334)

सहाबी-ए-रसूल हज़रत हुज़ैफ़ा कहते हैं कि जब कोई इंसान गुनाह करता है, तो इससे दिल हथेली की मानिंद सिकुड़ जाता है। फिर जब वह गुनाह पर गुनाह करता जाता है, तो दिल और ज़्यादा सिकुड़ जाता है, यहाँ तक कि उस पर मुहर लग जाती है। फिर वह ख़ैर की बात को सुनता है, मगर उस पर कोई असर नहीं होता। गुनाह आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ता रहता है, यहाँ तक कि जब वह ढेर बन जाता है, तो उसके दिल पर एक बड़ी मुहर लगा दी जाती है। उसके बाद इंसान अगर ख़ैर का कलिमा भी सुने, तो वह दिल में दाख़िल नहीं हो पाता।

(तफ़्सीर इब्ने अबी हातिम: 19181)

यहाँ 'दिल' से मुराद वही चीज़ है, जिसको ऊपर 'ज़मीर' कहा गया है। यानी इंसान के अंदर अच्छाई और बुराई को पहचानने की फ़ितरी सलाहियत है। इस सलाहियत को क़ुरआन में 'फ़ुरक़ान' की सलाहियत भी कहा गया है, और तक़्वा को इसका ज़रिया बताया है (8:29)। ज़मीर किसी आदमी के अंदर दूर अंदेशी पैदा कर देता है, जिससे वह मामले के ज़ाहिरी पहलुओं से धोखा खाए बग़ैर हर चीज़ को उसके असल रूप

में देख सके। वह ग़लतियों में फँसे बिना मामले की असल हक़ीक़त तक पहुँच जाए। इसलिए बहुत ज़रूरी है कि आदमी अपने ज़मीर को ज़िंदा रखे, ताकि वह इसके ज़रिए ख़ैर को पहचाने और उसके मुताबिक़ अमल कर सके, ठीक उसी तरह जैसे वह किसी ख़ारिजी सेंसर के ज़रिए अपने माद्दी काम को आसान बनाता है।

(डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम)

जुमा का दिन

जुमा का दिन इस्लाम में ख़ास अहमियत रखता है। यह दिन इस्लाम में इज्तिमाई इबादत का दिन है। इस इज्तिमाई इबादत से कई मुसबत पहलू वाबस्ता हैं। मसलन:

1. सफ़ाई-सुथराई — इस दिन हर मुसलमान सफ़ाई-सुथराई का ज़्यादा एहतिमाम करता है।
2. वक़्त की पाबंदी — क्योंकि सुबह से ही अगर अपने औक़ात को मुनज़्ज़म न किया जाए, तो मुक़र्रर वक़्त पर मस्जिद पहुँचना मुमकिन न होगा।
3. समाजी भलाई — लोग जब अपने घरों और दफ़्तरों से निकलकर मस्जिद आते हैं, तो रास्ते में वह ग़रीबों और मुहताजों की मदद भी करते हैं।

इसी के साथ जुमा की नमाज़ इज्तिमाई खूबियों की तर्बियत का बहुत बड़ा ज़रिया है। इस दिन तमाम लोग सफ़ें बाँधकर खड़े होते हैं। एक इमाम की पैरवी में नमाज़ के अरकान अदा करते हैं। ख़ामोश होकर

ख़ुत्बा सुनते हैं। यह चीज़ें एक एतिबार से इबादती हैं, दूसरे एतिबार से वह इज्तिमाई ख़ूबियाँ पैदा करने की तर्बियत हैं। वह पूरी क़ौम में इत्तिहाद और इत्तिफ़ाक़ पैदा करने का ज़रिया है। इसकी वजह से इन्फ़िरादी ज़िंदगी वसीअ होकर इज्तिमाई ज़िंदगी में तब्दील हो जाती है।

जुमा का दिन पूरे हफ़्ते के लिए एक ख़ुसूसी तर्बियत का दिन है। जो ख़ुसूसियात जुमा के दिन की हैं, इस्लाम यह चाहता है कि अहल-ए-ईमान उन्हें आम दिनों में भी मज़ीद इज़ाफ़े के साथ इख़्तियार करें। इस दिन हर आदमी को साफ़-सुथरा रहने का सबक़ दिया जाता है। लोगों का ख़ैरख़्वाह बनकर रहना सिखाया जाता है। इस दिन नज़्म-ओ-ज़ब्त की तर्बियत दी जाती है। अल्लाह के ज़िक्र से आशना कराया जाता है। इत्तिहाद और इज्तिमाइयत की मश्क कराई जाती है। दूसरे के दुख-दर्द में शरीक होने की सलाहियत उभारी जाती है, वग़ैरह।

क़ुरआन में कहा गया है कि जब नमाज़ के लिए लोग मस्जिद में जमा हों, तो उस वक़्त किसी ग़ैर-मुताल्लिक मशग़ूलियत की तरफ़ ध्यान नहीं जाना चाहिए। रसूलुल्लाह ﷺ के ज़माने में एक बार नमाज़ के दौरान कुछ लोग ख़रीद-फ़रोख़्त जैसे कामों में मशग़ूल हो गए, तो क़ुरआन में इसके ख़िलाफ़ सख़्ती के साथ तंबीह की गई, और कहा गया कि नमाज़ के दौरान हर क़िस्म की ग़ैर-मुताल्लिक मशग़ूलियत से दूर रहना चाहिए।

”يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِذَا نُودِيَ لِلصَّلَاةِ مِنْ يَوْمِ الْجُمُعَةِ فَاسْعَوْا إِلَى ذِكْرِ اللهِ وَذَرُوا الْبَيْعَ ذَلِكُمْ خَيْرٌ لَكُمْ إِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُونَ * فَإِذَا قُضِيَتِ الصَّلَاةُ فَانْتَشِرُوا فِي الْأَرْضِ وَابْتَغُوا مِنْ فَضْلِ اللهِ وَاذْكُرُوا اللهَ كَثِيراً لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُونَ * وَإِذَا رَأَوْا تِجَارَةً أَوْ لَهْواً انْفَضُّوا إِلَيْهَا وَتَرَكُوكَ قَائِماً قُلْ مَا عِنْدَ اللهِ خَيْرٌ مِنَ اللَّهْوِ وَمِنَ التِّجَارَةِ وَاللهُ خَيْرُ الرَّازِقِينَ“ (62:9-11)

यानी ऐ ईमान वालो, जब जुमा के दिन की नमाज़ के लिए पुकारा जाए, तो अल्लाह की याद की तरफ़ चल पड़ो और ख़रीदो-फ़रोख़्त छोड़ दो। यह तुम्हारे लिए बेहतर है, अगर तुम जानो। फिर जब नमाज़ पूरी हो जाए, तो ज़मीन में फैल जाओ और अल्लाह का फ़ज़्ल तलाश करो, और अल्लाह को कसरत से याद करो, ताकि तुम फ़लाह पाओ। और जब वह कोई तिजारत या खेल-तमाशा देखते हैं, तो उसकी तरफ़ दौड़ पड़ते हैं और तुमको खड़ा हुआ छोड़ देते हैं। कहो कि जो अल्लाह के पास है, वह खेल-तमाशे और तिजारत से बेहतर है, और अल्लाह बेहतरीन रिज़्क़ देने वाला है।

हदीस में जुमा की नमाज़ के बारे में आया है कि जो शख़्स ऐसा करे कि वह मस्जिद में दाख़िल होने के बाद लोगों की गर्दनें फलाँगते हुए अगली सफ़ में जाने की कोशिश करे, तो वह बहुत गुनाह का काम करता है। पैग़म्बर-ए-इस्लाम ﷺ ने एक आदमी को देखा कि वह जुमा के दिन लोगों की गर्दनें फलाँगता हुआ आगे बढ़ रहा है, तो आपने फ़रमाया: “बैठ जाओ! तुम लोगों को अज़ीयत दे रहे हो, हालाँकि तुम देर से आए हो।” (सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 1115)

इसी तरह अहल-ए-ईमान को चाहिए कि समाज में रहते हुए दूसरे पर ज़ुल्म करके अपना फ़ायदा हासिल न करे। अहल-ए-ईमान समाज में ‘नो प्रॉब्लम’ बनकर ज़िंदगी गुज़ारें, दूसरे को हरगिज़ तकलीफ़ न दें।

जुमा का दिन उन चीज़ों को सबके साथ मिलजुलकर सीखने का दिन है, जिसको दूसरे दिनों में आदमी अकेले सीखता है। जुमा का दिन उस अमल को मिलकर करने का दिन है, जिसको वह दूसरे दिनों में अकेले-अकेले करता है। अगर दूसरे दिन अपने तौर पर अमल करने के दिन हैं, तो जुमा सबके साथ मिलकर अमल करने का दिन है।

जदीद इंसान की तलाश

ज़ियान फ़्राँसिस रीवेल (Jean-Francois Revel, 1924-2006) की किताब "Without Marx or Jesus — मार्क्स या मसीह के बग़ैर" फ़्राँस में 1970 में प्रकाशित हुई। किताब में लेखक ने 'बोडीलेटर' का क़ौल नक़्ल किया है, जिसने तजवीज़ की थी:

> "कि इंसानी हुक़ूक़ के ऐलान में दो मज़ीद हुकूक़ शामिल किए जाएँ। एक, आप अपनी तर्दीद (contradict) करने का हक़। दूसरा, किनारा-कशी (withdraw or disengage) का हक़।"

अमरीकी नौजवान आज इसी बदलाव की तरफ़ बढ़ रहा है। एक तरफ़ वह ऐसे समाज को नकार रहा है, जिस समाज का मक़सद सिर्फ़ मुनाफ़ा कमाना हो और जहाँ पैसों के मामलों को ही सबसे ज़्यादा अहमियत दी जाती हो। दूसरी तरफ़ उसे रिवायती मज़ाहिब पर भी इत्मीनान नहीं, क्योंकि उसके नज़दीक बेहतरीन मज़हब वही है जिसे आदमी ख़ुद दरियाफ़्त करे।

अमरीकी नौजवानों में उभरने वाले रुझान के चंद नुमायाँ पहलू यह हैं: अख़्लाक़ी क़द्रों की तरफ़ वापसी, सिर्फ़ पैसे कमाने और तकनीक को ही सब कुछ समझने से इनकार करना, और कुदरती माहौल को तिजारती मुफ़ाद से ज़्यादा अहमियत देना। लेखक के मुताबिक़, आज अमरीका में एक नया इन्क़िलाब जन्म ले रहा है, जो इंसानियत के लिए निजात की राह पेश करता है। इसका मतलब यह है कि मबनी बर टेक्नोलॉजी तहज़ीब को मंज़िल समझने के बजाय उसे एक ज़रिया के तौर पर लिया जाए। और चूँकि न तो इस तहज़ीब को मुकम्मल तौर पर तर्क करना हमारे लिए फ़ायदेमंद है, और न ही इसका ज्यों का त्यों बरक़रार रखना मुफ़ीद, इसलिए ज़रूरी है कि हम अपने अंदर वह

सलाहियत पैदा करें, जिससे हम इस तहज़ीब को मुकम्मल तौर पर तर्क करने के बजाय उसे एक नई और बेहतर सूरत दे सकें।

> "Today in America a new revolution is rising. It is the revolution of our time. It is the only revolution that involves radical, moral, and practical opposition to the spirit of nationalism. It is the only revolution that, to that opposition, joins culture, economic and technological power, and a total affirmation of liberty for all in place of archaic prohibitions. It, therefore, offers the only possible escape for mankind today: the acceptance of technological civilization as a means and not as an end, and — since we cannot be saved either by the destruction of the civilization or by its continuation — the development of the ability to reshape that civilization without annihilating it." (p. 242)

यह ज़ेहन, जिसकी नुमाइंदगी इस किताब में की गई है, एक ऐसे आदमी की बेचैनी की तरह है, जिसे ख़ुद अपनी बेचैनी का सबब मालूम न हो। अमरीकी नौजवान माद्दी (materialistic) तहज़ीब से, जिसकी आख़िरी नुमाइंदगी मार्क्स ने की, मुकम्मल तौर पर ग़ैर मुतमइन हो चुका है। वह दोबारा उस माज़ी को देखने लगा है, जिसको उसके बाप-दादा ने छोड़ दिया था। मगर यहाँ माज़ी की नुमाइंदगी करने वाली जो चीज़ मिलती है, वह ईसाइयत है।

ईसाइयत अपने मौजूदा ढाँचे के साथ ख़ालिस इल्मी व अक़्ली ज़ेहन को अपील नहीं करती। इसलिए वह मार्क्स के साथ मसीह का भी बाग़ी हो जाता है। ताहम जब हम यह देखते हैं कि बग़ावत के बाद वह जिस चीज़ का तालिब है, वह उसके अपने अल्फ़ाज़ में वही चीज़ है,

जिसका जवाब सिर्फ़ मज़हब के अंदर है, तो हम यह मानने पर मजबूर होते हैं कि वह अपने धुँधले एहसास के साथ उसी चीज़ की तलाश में है, जिसको मज़हब कहते हैं।

मुसन्निफ़ ने अपनी किताब का नाम “Without Marx or Jesus — मार्क्स या मसीह के बग़ैर” रखा है। मगर हक़ीक़त के एतिबार से उसका नाम होना चाहिए था: “न मार्क्स न मौजूदा ईसाइयत।”

मैडलिन मरे ओहैर (Madalyn Murray O’Hair, 1919-1995) अमरीका की मशहूर तरीन नास्तिक (atheist) ख़ातून हैं। वह खुल्लम-खुल्ला ख़ुदा के इनकार की तब्लीग़ करती हैं। पक्के ख़ुदा परस्त वालिदैन की यह बेटी अपने बचपन का ज़िक्र करते हुए लिखती है:

> “मुझे उनके एतिक़ादात का इल्म था और एहतिराम भी करती थी। मगर 13 साल की उम्र में इतवार का पूरा दिन इंजील पढ़ते रहने के बाद मैं इसकी यकसर ख़िलाफ़-ए-अक़्ल बातों से बेज़ार हो गई।”

इंसान मज़हब की तरफ़ लौटना चाहता है, मगर मज़हब की ग़लत नुमाइंदगी उसे दोबारा मज़हब से दूर ले जा रही है। यही दौर-ए-जदीद का सबसे बड़ा हादसा है।

ज़िक्रुल्लाह

रसूलुल्लाह ﷺ ने एक मर्तबा अपने एक सहाबी मुआज़ इब्न जबल को नसीहत करते हुए फ़रमाया था: “अल्लाह रब्बुल-आलमीन को याद करो, हर पत्थर के पास और हर दरख़्त के पास।”

(अल-मुअज्म अल-कबीर लित-तबरानी, हदीस नंबर 374)

इस हदीस में पत्थर और दरख़्त का ज़िक्र बतौर तमसील है। इस हदीस का मतलब यह है कि हर चीज़ में ख़ालिक़ की निशानी है, उसके ज़रिए ख़ालिक़ की दरियाफ़्त करो और उसकी मारिफ़त हासिल करो। यहाँ 'ज़िक्रुल्लाह' से मुराद अल्लाह का लफ़्ज़ी विर्द नहीं है, बल्कि इससे मुराद अल्लाह की शऊरी याद (conscious remembrance of God) है। यह याद शऊरी अंदाज़ में हर वक़्त मतलूब है। यह शऊरी याद किसी क़िस्म के रुटीन का नाम नहीं है, बल्कि वह आला हक़ीक़त की दरियाफ़्त के नतीजे में ज़ेहन-ए-इंसानी में ख़ुद-ब-ख़ुद पैदा होती है। यह एक ज़िंदा और तख़्लीक़ी सोच है।

आला ज़िक्र किसी इंसान के अंदर उस वक़्त पैदा होता है, जब वह गहरे ग़ौर-ओ-फ़िक्र के ज़रिए अल्लाह रब्बुल-आलमीन को दरियाफ़्त करे। यह दरियाफ़्त इतनी कामिल हो कि वह उसकी सोच पर ग़ालिब आ जाए, उसकी शख़्सियत उसी दरियाफ़्त में ढल जाए। वह उसके सुबह-शाम का ज़रूरी हिस्सा बन जाए।

जदीद साइंटिफ़िक डिस्कवरी ने ब-ज़रिया तख़्लीक़, ख़ालिक़ की दरियाफ़्त को बे-इनतिहा हद तक वसीअ कर दिया है। हक़ीक़त यह है कि काइनात के साइंसी मुताले का मक़सद सिर्फ़ टेक्निकल तरक़्क़ी नहीं है। इससे बढ़कर इसका एक और मक़सद है, और वह है तख़्लीक़ात में ख़ालिक़ को दरियाफ़्त करना। तख़्लीक़ात का गहरा मुताला करके ज़िंदगी के राज़ को मालूम करना। माद्दी काइनात की तहक़ीक़ करके यह जानना कि इसके नक़्शे के मुताबिक़, इंसानी तरक़्क़ी का क़ानून क्या है। चुनाँचे इंसान जब काइनात का मुताला करता है, तो वह इसमें एक तरफ़ ख़ालिक़ की तजल्लियात को पा लेता है और दूसरी तरफ़ उसे यह भी मालूम होता है कि उसे अपनी ज़िंदगी की कामयाब तामीर किन ख़ुतूत पर करनी चाहिए। (डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम)

एक इंटरव्यू

सवाल: मौलाना, बाज़ मुफ़स्सिरों का ख़याल है कि हिन्दुस्तान के अंदर अलग-अलग क़ौमों और समाजों के बीच जो टकराव हैं, वे आख़िर में देश को तोड़ने की तरफ़ ले जाएँगे। इस राय के बारे में आपका क्या ख़याल है?

जवाब: टकराव तो हर समाज में होते हैं। कोई भी समाज टकराव से पूरी तरह ख़ाली नहीं होता। मुस्लिम समाज भी टकराव से ख़ाली नहीं रह सकता। मेरा ख़याल है कि जो लोग यह समझते हैं कि रूस की तरह हिन्दुस्तान भी टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा, वह ग़लतफ़हमी में मुब्तला हैं। रूस के टूटने की वजह यह है कि उसने अवाम को बे-रोटी कर दिया। मैं ख़ुद रूस गया हूँ। अवाम भूखे मर रहे हैं। रूस ने अपने सारे वसाइल अस्लिहा-साज़ी पर लगा दिए और अवाम को बे-रोटी कर दिया। लेकिन इंडिया में ऐसा नहीं हुआ कि हुकूमत ने अवाम की रोटी छीन ली हो। अगर आप अवाम से रोटी छीन लेंगे, तो फिर बग़ावत होगी। इस्लामी हुकूमत ऐसा करेगी, तो उसके ख़िलाफ़ भी बग़ावत होगी। इंडिया में लोगों को आज़ादी है। उनके पास खेत हैं, वह पैदा करते हैं और खाते हैं। वहाँ बग़ावत किस तरह होगी? बाक़ी झगड़े कहाँ नहीं होते। झगड़े तो हमेशा रहे हैं और हमेशा रहेंगे।

सवाल: बाबरी मस्जिद के हवाले से आपकी राय आम उलमा से मुख़्तलिफ़ रही। वहाँ के कई उलमा को आपसे शिकायत भी है कि आप उनके मौक़िफ़ की तरफ़दारी नहीं करते?

जवाब: बाबरी मस्जिद के बारे में मेरी राय आम मुसलमानों की राय से मुख़्तलिफ़ नहीं। मैं इस इल्ज़ाम की तर्दीद करता हूँ। मेरा इख़्तिलाफ़ सिर्फ़ तदबीर का इख़्तिलाफ़ है। उनका ख़याल था कि

मामले को सड़कों पर लाया जाए। यह सड़कों पर हल होगा, जुलूस से हल होगा, जल्सों से हल होगा, गोली से हल होगा। मैं समझता था कि इन तरीक़ों से नहीं, बल्कि पुर-अमन तरीक़े से हल होगा। आपने देखा कि आख़िरकार उनको नाकामी हुई।

सवाल: क्या यह शरीअत का मसला है कि जिस जगह एक मर्तबा मस्जिद बन जाए, वहाँ क़यामत तक कोई और तामीर नहीं हो सकती?

जवाब: हमारी फ़िक्ह में ऐसा ही लिखा है।

सवाल: क़ुरआन-ओ-सुन्नत की रोशनी में मसला क्या है?

जवाब: बस इतना ही काफ़ी है, इससे ज़्यादा कुछ नहीं कहूँगा।

सवाल: बाज़ हज़रात ने क़ौमी और असली इस्लाम के ख़ाने बना रखे हैं और उनके नज़दीक क़ौमी ख़िदमत को इस्लामी ख़िदमत क़रार नहीं दिया जा सकता। क्या मुसलमानों के क़ौमी मसाइल को हल करने की कोशिश करना ग़ैर-इस्लामी है?

जवाब: बिल्कुल इस्लामी है। सिर्फ़ यह है कि तक़सीम-ए-कार होनी चाहिए। कुछ लोग मुसलमानों को तालीम में आगे बढ़ाने की कोशिश करें, कुछ फ़िक्री चैलेंजों का मुक़ाबला करें, कुछ मुसलमानों को इंडस्ट्री में तरक़्क़ी दें। यह ऐन इस्लामी काम होगा। मैं सिर्फ़ एक चीज़ का मुख़ालिफ़ हूँ — हुकूमतों से टकराव। उसको मैं ज़हर समझता हूँ, क्योंकि यह सारे काम बिगाड़ देता है।

सवाल: अमीर तन्ज़ीम-ए-इस्लामी डॉक्टर इसरार अहमद से आपके ख़ुशगवार ताल्लुक़ात यक-ब-यक नाख़ुशगवार क्योंकर हो गए? अब सुना है कि तर्क-ए-मुलाक़ात तक नौबत आ पहुँची है। हालाँकि चंद साल पहले उन्होंने मुहाज़रात-ए-क़ुरआनी में आपको ख़ास तौर पर बुलाया था?

जवाब: डॉक्टर साहब मुझसे क्यों नाराज़ हैं, यह उनको मालूम होगा। मैंने तो “अल-रिसाला” में डॉक्टर साहब के ख़िलाफ़ कभी कुछ नहीं लिखा और मैं उनके काम की क़दर करता हूँ, जो कुछ भी है। लेकिन इख़्तिलाफ़ अपनी जगह। वह जिस इस्लामी इन्क़िलाब का ज़िक्र करते हैं और जो बैअत उन्होंने अपने पैरोकारों से ले रखी है, मैं उसे सही नहीं समझता।

सवाल: पाकिस्तान में इन दिनों उलमा का एक तबक़ा जम्हूरियत (democracy) को तर्क करके ख़िलाफ़त का अलमबरदार बन गया है। उसके लिए बाक़ायदा फ़ोरम बना दिए गए हैं। क्या इस्लाम में जम्हूरियत को बुरा समझा गया है? और जम्हूरियत और ख़िलाफ़त में हक़ीक़ी फ़र्क़ क्या है?

जवाब: देखिए, जम्हूरियत (democracy) नाम है एक हुकूमती निज़ाम का। मैं उसे इस्लाम के मुताबिक़ समझता हूँ, और ख़िलाफ़त भी ऐन जम्हूरी है। उसे छोड़ दीजिए कि जम्हूरी नुमाइंदे क़ानूनसाज़ी भी करते हैं, वहाँ तक न जाइए। लेकिन यह कि हुकूमत करने वाले किस तरह चुने जाएँ, जम्हूरियत उसका नाम है। इस्लाम का निज़ाम-ए-ख़िलाफ़त ऐन जम्हूरी था। यह बेकार बहसें हैं और यह उन लोगों ने शुरू कर रखी हैं, जिन्होंने निज़ाम को निशाना बना रखा है और फ़र्द-साज़ी के काम को अमलन तर्क कर दिया है।

सवाल: आपने मौलाना मौदूदी मरहूम की फ़िक्र पर यह एतराज़ किया कि उसमें दीन की असल बात को बदल दिया गया है, और सियासत — जो कि दीन का एक तक़ाज़ा है — उसे कुल दीन क़रार दे दिया गया। आपने उसे “ताबीर की ग़लती” क़रार दिया और एक मुतवाज़िन फ़िक्र पेश करने का दावा किया। लेकिन कुछ लोगों का ख़याल है कि रद्द-ए-अमल में आपने एक दूसरी इंतिहा को छू लिया और दीन की ऐसी ताबीर कर डाली, जिसे मान लेने के बाद एक

मुसलमान मुल्क या राजनीति के मामलों में हिस्सा लेने के क़ाबिल नहीं रहता।

जवाब: जिन लोगों ने मुझ पर यह एतराज़ किया है, उन्हें चाहिए कि वे इसके लिए अपनी दलीलें भी दें। यह एक बे-दलील बयान है कि मैं एक दूसरी इंतिहा तक पहुँच गया हूँ। मैंने एक फ़िक्र पर एतराज़ किया, उसकी ग़लती वाज़ेह करने के लिए दलाइल दिए और उसके मुतवाज़ी एक दूसरा फ़िक्र पेश किया। अब मेरे फ़िक्र को ग़लत साबित करने के लिए दलाइल की ज़रूरत है। मैं जानता हूँ जो साहब यह एतराज़ करते हैं, लेकिन उन्होंने कोई दलील तो दी नहीं। बस एक बयान दे दिया है। अब उनके बयान पर क्या बयान दिया जाए।

सवाल: मौलाना, कुछ लोग आप पर तरह-तरह के इल्ज़ामात आइद करते हैं। यह कि कर्नल मुअम्मर क़ज़्ज़ाफ़ी आपकी माली इमदाद करते हैं, यह कि हुकूमत-ए-भारत आपकी सरपरस्ती करती है, यह कि आपका "अल-रिसाला" हुकूमत हज़ारों की तादाद में ख़रीद कर मुफ़्त तक़सीम करती है?

जवाब: यह सद-फ़ीसद झूठ है। आप जिस सतह पर भी जाँच कर लें। आप चाहें तो मेरे अकाउंट को चेक कर लें, मेरे पास जो कुछ है, उसका हिसाब-किताब मौजूद है, जिसका बाक़ायदा ऑडिट किया जाता है। हिसाबात में लिखा हुआ है कि मैंने मकान कहाँ से खरीदा और गाड़ी कैसे खरीदी। आपने लीबिया की बात की है। क्या "अल-रिसाला" में क़ज़्ज़ाफ़ी की तब्लीग़ होती है? क़ज़्ज़ाफ़ी लीबिया का डिक्टेटर है और मैं सब्र और एराज़ की बात करता हूँ। क्या क़ज़्ज़ाफ़ी मुझे इसलिए पैसा देगा कि मैं उसके उलट तब्लीग़ करूँ? अगर कोई मेरी इस दलील से मुतमइन न हो, तो मैं मुबाहला (invoking divine curse to prove truth) के लिए तैयार हूँ। जिन साहब को एतराज़ है, वह मस्जिद में मेरे साथ आ जाएँ। मैं यह कहने के लिए तैयार हूँ

कि जिस शख़्स ने क़ज़ाफ़ी से पैसा लिया, उस पर अल्लाह की लानत हो, वह अल्लाह की रहमत से महरूम हो जाए, उसे रसूलुल्लाह ﷺ की शफ़ाअत न मिले, हौज़-ए-कौसर पर हज़ूर उसे पानी न पिलाएँ। मैं भी यह कहता हूँ और वह साहब भी यह कहें।

हाँ अलबत्ता यह ज़रूर है कि मैं वहाँ कॉन्फ्रेंसों में जाता हूँ। एक मर्तबा एक अरब ने यही एतराज़ किया, तो मैंने उनको वह तक़रीरें दिखा दीं जो मैंने वहाँ की थीं, चूँकि कॉन्फ्रेंसों के बाद ऐसी तक़रीरें शाया कर दी जाती हैं। उन तक़रीरों में मेरा मौज़ू वही होता है, जिसका “अल-रिसाला” में ज़िक्र होता रहता है। कोई साबित कर दे कि मैंने कभी क़ज़ाफ़ी की तारीफ़ की हो या उसके हक़ में तक़रीर की हो?

सवाल: और इंडिया की सरपरस्ती का मामला क्या है?

जवाब: यह भी झूठ है। कोई साबित करे कि भारत सरकार मेरी मैगज़ीन इस तरह ख़रीदती है। मैं इंडिया में रहता हूँ, लेकिन मैं आज तक हुकूमत के किसी आदमी से मुलाक़ात करने नहीं गया। किसी गवर्नर, वज़ीर, सदर को नहीं मिला। हालाँकि उनसे मुलाक़ात मेरे लिए मुश्किल नहीं। यह सही है कि हुकूमत के लोग मेरा परचा पढ़ते हैं, जिस तरह दूसरे परचे पढ़ते हैं। लेकिन हुकूमत से मेरा कोई ताल्लुक़ नहीं और न मैंने हुकूमत से कोई पैसा लिया है। अगर कोई यह साबित कर दे, तो मैं लिखकर देने को तैयार हूँ कि मैं अपने मरकज़ को आग लगा दूँगा। जी हाँ, अगर कोई यह साबित कर दे कि मैं हुकूमत से इमदाद लेता हूँ, तो मैं अपने मरकज़ को ख़ुद आग लगा दूँगा। उसके लिए भी मैं मुबाहला को तैयार हूँ।

सवाल: आपकी कोठी, कार का ज़िक्र भी होता रहता है?

जवाब: जैसा कि मैंने अर्ज़ किया, मेरे पास जो रक़म भी है, उसका हिसाब-किताब मौजूद है। मेरे अकाउंट का ऑडिट भी वही

साहब करते हैं, जो जमात-ए-इस्लामी के ऑडिटर हैं — मक़सूद आलम साहब। वह मेरे और जमात-ए-इस्लामी हिन्द के हिसाबात देखते हैं। आप जानते हैं कि ऑडिटर को सब मालूम होता है। जिनको शुब्हा है, उन साहब से मालूम कर लें।

(बशुक्रिया: ज़िंदगी, लाहौर, सितम्बर 1991)

Here is the clean copy of the next set of articles (Diary 1986 and other entries), proofread with corrected spellings (including nuktas), punctuation, and formatting as requested.

डायरी 1986

26 जून 1986

बंगलोर में 26 जून से 30 जून 1986 तक एक इंटरफेथ कॉन्फ्रेंस थी। इसका दावतनामा मुझे मिला था और मैंने उसका मक़ाला भी तैयार कर लिया था। कॉन्फ्रेंस वालों की तरफ़ से टिकट भी आ गया था। मगर बाद को मैंने बंगलोर जाने का इरादा बिल्कुल ख़त्म कर दिया। मगर कॉन्फ्रेंस के दो दिन पहले डॉक्टर राजेन्द्र वर्मा मेरे दफ़्तर में आए। कॉन्फ्रेंस के हुक्काम के मुताबिक़ मैं इनका रिस्पॉन्डन्ट (respondent) बनाया गया हूँ। उन्होंने इसरार किया कि आप ज़रूर बंगलोर चलें। चुनाँचे इनके इसरार की बिना पर मैं राज़ी हो गया। आज सुबह की फ़्लाइट से बंगलोर जा रहा हूँ।

इस दरमियान का एक वाक़िआ यह भी है कि 29 जून को इस्लामी मरकज़ का माहाना इज्तिमा था। हसब-ए-मामूल लोग आए। मगर मैं

उस वक़्त बंगलोर में था। इज्तिमा में मेरा एक टेप बनाया गया। बंगलोर से 30 जून की शाम को वापस आया। उस वक़्त मालूम हुआ कि दो मोटे-मोटे मुश्तबह क़िस्म के आदमी इज्तिमा में आए थे। वह मुझको पूछते रहे। जब उनको यक़ीन हो गया कि मैं दिल्ली में नहीं हूँ, तो वह वापस चले गए।

आजकल कुछ लोग मेरे दुश्मन हो गए हैं। शायद वह मुझे क़त्ल करा देना चाहते हैं। शुब्हा है कि मज़कूरा आदमी उन्हीं की तरफ़ से किराए पर भेजे गए थे। यही लोग दुबारा 2 जुलाई को आए। इस बार वह तीन आदमी थे। दफ़्तर वालों ने कह दिया कि इस वक़्त मुलाक़ात नहीं हो सकती। मगर वह मुलाक़ात के लिए इसरार करते रहे। बड़ी मुश्किल से वह वापस गए। अल्लाह तआला महफ़ूज़ रखे।

27 जून 1986

अस्सी (80) की दहाई में मेरे साथ माद्दी नुक़्सानात के कुछ वाक़िआत पेश आए। एक नुक़्सान पर हमारे एक साथी ने मुझे यह ख़त लिखकर कहा कि उनको शरीक-ए-मशवरा नहीं किया गया, वरना इसकी नौबत न आती। वह अपने ख़त 17 जून 1986 में लिखते हैं:

> “इसका नुक़्सान यह सामने आया कि अगर आपने मुझे ठीक से समझा होता, तो शायद कई मौक़ों पर मेरा ज़्यादा मुफ़ीद इस्तेमाल कर सकते थे। अगर आप मुझे इस मसले में शुरू से दख़ील फ़रमा देते, तो मेरे ख़्याल से नौईयत ही उस वक़्त कुछ और होती।”

अजीब बात है कि इन मामलात में मेरे सोचने का अंदाज़ इससे सरासर मुख़्तलिफ़ है, जो हमारे मज़कूरा साथी के ख़त में नज़र आता है। यह वाक़िआत बिला-शुब्हा नुक़्सानात के वाक़िआत थे। मगर इनके ज़रियह मुझे एक बहुत बड़ी दरियाफ़्त हुई। इन वाक़िआत ने मुझे एक

ऐसी हक़ीक़त को समझने में मदद दी, जो इससे पहले शऊरी तौर पर मुझ पर वाज़ेह न थी।

इन वाक़िआत पर ग़ौर करने के बाद मैंने जाना कि अगर मुझे असल वाक़िआ से कुछ पहले मालूम हो गया होता कि मेरे मुख़ालिफ़ीन इस मामले में क्या सोच रहे हैं, तो मैं बरवक़्त इक़दाम करके यक़ीनी तौर पर इसे रोक सकता था। अगर मुझे मालूम होता कि आबाई ज़मीन या मरकज़ की एक इमारत के बारे में कोई शख़्स क़ब्ज़े का मंसूबा बना रहा है, तो मैं उसे पहले ही बेच देता। हक़ीक़त यह है कि इस तजुर्बे के बाद ही मेरी समझ में वह आयत आई, जिसके अल्फ़ाज़ यह हैं:

"وَلَوْ كُنْتُ أَعْلَمُ الْغَيْبَ لَاسْتَكْثَرْتُ
مِنَ الْخَيْرِ وَمَا مَسَّنِيَ السُّوءُ" (7:188)

यानी, अगर मैं ग़ैब को जानता, तो मैं बहुत से फ़ायदे अपने लिए हासिल कर लेता और मुझे कोई नुक़्सान न पहुँचता।

इस आयत से मालूम होता है कि दुनिया में फ़ायदा हासिल करने का ख़ास मदार इस पर है कि आदमी ग़ैब को जानता हो। रसूलुल्लाह ﷺ को जो ग़ैर-मामूली फ़तूहात हासिल हुईं, इसका ख़ास-उल-ख़ास राज़ यही था। सीरत से यह साबित होता है कि अल्लाह तआला बार-बार अपने पैग़म्बर को मुख़ालिफ़ीन की ख़ुफ़िया तदबीरों से बाख़बर करते रहे। इस तरह आप उनके इक़दाम से पहले उनके मंसूबे से आगाह हो गए और पेशगी कार्यवाही करके उनके ख़ुफ़िया मंसूबों को नाकाम बना दिया।

मज़कूरा साथी एक मुख़लिस आदमी हैं। मैं उनकी क़द्र करता हूँ। मगर मुझे ऐसा महसूस होता है कि उनका इदराक अभी उस दर्जे को नहीं पहुँचा है कि वह हमारे मिशन की आज़ादाना रहनुमाई कर सकें। इसकी एक मिसाल उनका मज़कूरा-बाला ख़त है।

यह सतरें लिखते हुए मज़कूरा साथी को शायद सूरह आल-ए-इमरान की वह आयतें याद न थीं, जो ग़ज़वा-ए-उहुद से मुताल्लिक़ हैं। क़िस्सा यह है कि जब रसूलुल्लाह ﷺ को मालूम हुआ कि क़ुरैश-ए-मक्का आपसे लड़ने के लिए आ रहे हैं, तो आपने अपने साथियों से मशवरा किया। सहाबा की जमात की राय यह हुई कि मदीना से बाहर निकलकर उनका मुक़ाबला किया जाए। मगर अब्दुल्लाह बिन अबी की राय शिद्दत से यह थी कि हम लोग मदीना में लड़ें। जब क़ुरैश का लश्कर यहाँ तक पहुँच जाए, तो हम अपने घरों की आड़ लेकर उनका मुक़ाबला करें। मगर रसूलुल्लाह ﷺ ने अब्दुल्लाह बिन अबी की राय के ख़िलाफ़ दूसरे सहाबा की राय पर अमल किया और आगे बढ़कर उहुद के मक़ाम पर दुश्मन की फ़ौज का मुक़ाबला किया। जैसा कि मालूम है कि इस जंग में मुसलमानों को शिकस्त हुई।

जंग के बाद अब्दुल्लाह बिन अबी ने इस पर तब्सिरा करते हुए कहा कि चूँकि पैग़म्बर ने हमारी राय नहीं मानी, इसलिए शिकस्त हुई। अगर पैग़म्बर हमारी बात मान लेते, तो हम अपनी बस्ती में रहकर मुक़ाबला करते और ऐसा न होता कि बाहर उहुद की वादी में हमारे नौजवान क़त्ल कर दिए जाएँ।

इसका जवाब देते हुए क़ुरआन में कहा गया कि जो कुछ होता है सब ख़ुदा के हुक्म से होता है। अगर तुम अपने घरों में होते और तुम पर मौत लिखी हुई होती, तो जहाँ तुम थे, वहीं मारे जाते:

”قُلْ إِنَّ الْأَمْرَ كُلَّهُ لِلَّهِ يُخْفُونَ فِي أَنْفُسِهِمْ مَا لَا يُبْدُونَ لَكَ يَقُولُونَ لَوْ كَانَ لَنَا مِنَ الْأَمْرِ شَيْءٌ مَا قُتِلْنَا هَاهُنَا قُلْ لَوْ كُنْتُمْ فِي بُيُوتِكُمْ لَبَرَزَ الَّذِينَ كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقَتْلُ إِلَى مَضَاجِعِهِمْ“ (3:154)

यानी, कहो, सारा मामला अल्लाह के इख़्तियार में है। वह अपने

दिलों में ऐसी बात छुपाए हुए हैं, जो वह तुम पर ज़ाहिर नहीं करते। वह कहते हैं कि अगर इस मामले में कुछ हमारा भी दख़ल होता, तो हम यहाँ न मारे जाते। कहो, अगर तुम अपने घरों में होते, तब भी जिनका क़त्ल होना लिख दिया गया था, वह अपनी क़त्लगाहों की तरफ़ निकल पड़ते।

मैं मज़कूरा साथी की इज़्ज़त करता हूँ और दिल से उनके इख़्लास का क़ायल हूँ। मगर मेरी सोच में और उनकी सोच में बहुत ज़्यादा फ़र्क़ है।

मरकज़ की एक इमारत के वाक़िए पर उनका कहना है कि अगर उनको इस मामले में शरीक-ए-मशवरा किया जाता, तो वहाँ की बिल्डिंग के साथ यह हादसा पेश न आता। जबकि मेरी सोच यह है कि इस मामले में मुझे इसलिए नुक़्सान उठाना पड़ा कि मुझे इल्म-ए-ग़ैब हासिल नहीं।

एक ही वाक़िया है। मगर कैसी अजीब बात है कि इसमें एक शख़्स ने ख़ुदा को पाया और दूसरे शख़्स ने अपने आप को।

1 जुलाई 1986

कैलीगुला (Caligula) चौथा रोमी शहनशाह था। उसने 37 ई. से लेकर 41 ई. तक हुकूमत की। इतिहासकार आम तौर पर उसकी बुरी तस्वीर पेश करते हैं। उसने बहुत से लोगों का क़त्ल करा दिया। उसने अजीब-अजीब अहकाम नाफ़िज़ किए। यहाँ तक कि कुछ इतिहासकार उसे पागल कहते हैं। अगरचे इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (Encyclopaedia Britannica) के राइटर का कहना है कि उसके पागलपन की अक्सर शहादतें ग़ैर साबितशुदा हैं:

> "Much of the evidence of his alleged madness has been disproved." (vol. II, p. 459)

आख़िरकार एक फ़ौजी अफ़सर ने उसे क़त्ल कर दिया।

कैलीगुला के अजीब-अजीब कामों में से एक यह बताया जाता है कि वह एक बार अपने तमाम लोगों से बिगड़ गया। उसने कहा कि तुम सब के सब नालायक़ हो और तुमसे कहीं ज़्यादा बेहतर यह मेरा घोड़ा है। उसका एक घोड़ा था, जिसका नाम इंसीटेटस (Incitatus) था। उसने अपने उस घोड़े को रोम का गवर्नर बना दिया।

कैलीगुला सवार और सवारी में फ़र्क़ न कर सका। वरना उसे मालूम होता कि घोड़ा सवारी करने के लिए बिला-शुब्हा समझदार है, मगर वह सवार बनने के लिए समझदार नहीं।

यही मामला इंसानों का भी है। कुछ लोग मुदर्रिस या मुक़र्रिर की हैसियत से क़ाबिल हो सकते हैं, लेकिन अगर उन्हें क़ौम का क़ायद बना दिया जाए, तो बहुत मुमकिन है कि इस दूसरे मैदान में वह उतने ही ना-अहल साबित हों, जितना वह दर्स और तक़रीर के मैदान में अहल नज़र आ रहे हैं।

2 जुलाई 1986

क़ुरआन की तफ़्सीर हदीस से करना बहुत अच्छी बात है। मगर इसका मतलब यह नहीं कि जब एक मुफ़स्सिर किसी आयत के ज़ैल में एक हदीस नक़्ल कर दे, तो इसका मतलब लाज़िमन यह हो जाएगा कि हदीस के मुताबिक़ उस आयत की तफ़्सीर यही है। क्योंकि ऐसी हदीसें बहुत कम हैं, जो बराह-ए-रास्त तौर पर किसी आयत की तफ़्सीर में आई हों। ज़्यादातर ऐसा होता है कि मुफ़स्सिर अपने ख़याल के मुताबिक़ आयत का एक मफ़हूम समझता है और उसके मुताबिक़ हदीसें उसके ज़ैल में नक़्ल कर देता है।

मसलन सूरह मुज़्ज़मिल की एक आयत है:

“إِنَّا سَنُلْقِي عَلَيْكَ قَوْلًا ثَقِيلًا”

यानी, हम तुम पर एक भारी बात डालने वाले हैं।(73:5) इस

आयत में ‘क़ौल-ए-सक़ील’ की तशरीह करते हुए मुफ़स्सिर इब्ने कसीर ने वह हदीसें नक़्ल कर दी हैं, जिनका ताल्लुक़ नुज़ूल-ए-वही की कैफ़ियत से है। मसलन सहीह अल-बुख़ारी की हदीस कि रसूलुल्लाह ﷺ पर जब क़ुरआन नाज़िल होता, तो वह आप पर सख़्त बोझ पड़ता। यहाँ तक कि सर्दी के ज़माने में भी आपकी पेशानी से पसीना टपकने लगता। (तफ़्सीर इब्ने कसीर, जिल्द 7, सफ़ा 406)

नुज़ूल-ए-वही की यह कैफ़ियत बज़ात-ए-ख़ुद सही है और वह रिवायतों से साबित है। मगर सूरह मुज़्ज़मिल की मज़कूरा आयत का ताल्लुक़ इससे नहीं। हक़ीक़त यह है कि इस आयत में ‘क़ौल-ए-सक़ील’ का मतलब लोगों के सामने हक़ की गवाही देने की ज़िम्मेदारी है, जो अगली सूरह (अल-मुद्दस्सिर) में इन अल्फ़ाज़ में मज़कूर है:

“قُمْ فَأَنْذِرْ” (74:2)

यानी, उठ और लोगों को आगाह कर।

ख़ुदाई पैग़ाम से लोगों को आगाह करना बिला-शुब्हा इस दुनिया का मुश्किल तरीन काम है। इसी लिए इसे ‘क़ौल-ए-सक़ील’ से ताबीर किया गया है।

3 जुलाई 1986

एक साहब ने अपने एक रिश्तेदार का ज़िक्र करते हुए बताया कि वह बहुत बहादुर थे। मसलन, उन्होंने बताया कि एक बार वह पुरानी दिल्ली की किसी सड़क पर खड़े थे कि उनके पास से एक साइकिल सवार गुज़रा। उसकी साइकिल से कीचड़ उड़कर मज़कूरा साहब के कपड़े पर आ गया। उन्होंने साइकिल वाले को रोका, अभी वह उससे बात ही कर रहे थे कि मज़कूरा रिश्तेदार ने “उसे एक हाथ लगा दिया”।

मगर यह उस वक़्त की बात है, जब मज़कूरा रिश्तेदार साहब-ए-औलाद नहीं हुए थे। बाद में उनकी शादी हुई और बच्चे हुए, तो

मज़कूरा साहब के अल्फ़ाज़ में, “अब उनके बच्चों ने उनको बुज़दिल बना दिया”। बच्चों के बाद का वाक़िया है, मोहल्ले के एक शख़्स ने मज़कूरा रिश्तेदार से बदतमीज़ी की। मगर वह कुछ न बोले, बिल्कुल ख़ामोशी के साथ अपने घर चले गए। उनका यह रवैया उनके साबिक़ा रवैयह के सरासर ख़िलाफ़ था। जब उनसे पूछा गया कि इस बदतमीज़ी को तुमने कैसे बर्दाश्त किया, तो उन्होंने जवाब दिया कि अपने छोटे-छोटे बच्चों की ख़ातिर। मेरे बच्चों ने मुझे बर्दाश्त करने पर मजबूर कर दिया। मेरे बच्चे घर के बाहर सड़क पर निकलते हैं। मैं हर वक़्त उनके साथ नहीं होता। वह शख़्स मोहल्ले ही का आदमी है। उसका ग़ुस्सा अगर बढ़ गया, तो वह मेरे बच्चों के साथ कुछ भी कर सकता है। हक़ीक़त यह है कि मज़कूरा रिश्तेदार बहुत बहादुर आदमी था। वह किसी से नहीं डरता था। वह बात-बात में लड़ जाता था। मगर जब उसकी शादी हुई और उसके यहाँ बच्चे हो गए, तो बच्चों की मोहब्बत ने उसका मिज़ाज बदल दिया।

मज़कूरा रिश्तेदार के अंदर यह ख़ूबी मुमकिन तौर पर उसके बच्चों को पहुँचने वाले नुक़्सान के अंदेशे ने पैदा की। यह वह ख़ूबी है, जो दर्द की दरसगाह में सिखाई जाती है। अगर आपके अंदर दर्द न हो, तो आप इस मामले को नहीं समझ सकते। हमारे मिल्ली क़ाइदीन सब्र और एराज़ की बातों का मज़ाक उड़ाते हैं। इसकी वजह यही है कि उनके अंदर क़ौम का दर्द नहीं है। अपने बच्चों की ख़ातिर हर आदमी बुज़दिल बना हुआ है। मगर क़ौम के बच्चों की ख़ातिर कोई शख़्स बुज़दिल बनने के लिए तैयार नहीं।

4 जुलाई 1986

मिसेज़ एना खन्ना (Anna Khanna) एक अंग्रेज़ ख़ातून हैं। इंग्लैंड में उन्होंने आला तालीम हासिल की। इसके बाद उनकी मुलाक़ात मिस्टर प्रेम खन्ना से हुई, जो आगे की तालीम के लिए इंग्लैंड गए थे।

वह IAS हैं। बाद को दोनों ने शादी कर ली और अब मिसेज़ एना खन्ना अपने शौहर के साथ नई दिल्ली में रहती हैं।

मिसेज़ खन्ना अगरचे एक ईसाई घराने में पैदा हुईं, मगर ईसाइयत पर या मज़हब पर उनका कोई अक़ीदा न था। वह कभी चर्च नहीं जाती थीं। वह पूरे मानों में सेक्युलर थीं।

फ़रवरी 1984 में इंग्लिश 'अल-रिसाला' निकला, तो हम लोगों का रब्त उनसे क़ायम हुआ। मेरी लड़की फ़रीदा अपने तर्जुमा किए हुए इंग्लिश मज़ामीन की नज़र-सानी उनसे कराती थी। शुरू के दो साल इस तरह गुज़रे कि वह अक्सर ख़ुदा और मज़हब की बातों पर फ़रीदा से बहस करतीं। कुछ मज़ामीन जिनमें ख़ुदा को ख़ैर-ए-मुतलक़ के तौर पर पेश किया गया था, उनको देखकर वह बिगड़ गईं। यहाँ तक कि अंदेशा हुआ कि शायद वह नज़र-सानी का काम ही छोड़ दें। ताहम काम जारी रहा और उनके कहने के मुताबिक़ मुआवज़े की शरह भी बढ़ाती जाती रहीं। यहाँ तक कि तीसरा साल आ गया। और फ़रीदा ने 'मज़हब और जदीद चैलेंज' का इंग्लिश तर्जुमा करके उन्हें नज़र-सानी करने के लिए दिया। इस किताब के पढ़ने के बाद उनके ज़ेहन में वाज़ेह तौर पर फ़र्क़ महसूस हो रहा है। अब न सिर्फ़ यह कि उनकी शिद्दत ख़त्म हो गई है, बल्कि ख़ुदा पर उनका अक़ीदा बहाल होता हुआ नज़र आता है। अब वह पहले से ज़्यादा हमारे कामों के लिए हमदर्द हो गई हैं।

यह एक मिसाल है, जिससे अंदाज़ा होता है कि अगर मुसलसल काम किया जाए, तो सख़्त से सख़्त आदमी को भी मुतास्सिर किया जा सकता है।

एक सवाल

सवाल: “أَكُفَّارُكُمْ خَيْرٌ مِنْ أُولَئِكُمْ أَمْ لَكُمْ بَرَاءَةٌ فِي الزُّبُرِ” — यानी, क्या तुम्हारे मुनकिर उन लोगों से बेहतर हैं या तुम्हारे लिए आसमानी किताबों में माफ़ी लिख दी गई है (54:4)? इसमें किस चीज़ के बरी होने की तरफ़ इशारा है। (हाफ़िज़ सैयद इक़बाल अहमद उमरी, तामिल नाडु)

जवाब: क़ुरआन की इस आयत में वक़्ती रेफ़रेंस के एतिबार से क़दीम मक्का के क़ुरैश को ख़िताब करते हुए यह बात कही गई है। मगर अबदी उसूल के एतिबार से इस आयत का मतलब यह है कि इस दुनिया में कोई गिरोह मुस्तसना (exception) गिरोह की हैसियत नहीं रखता। हर एक का मामला यकसाँ है। यानी हर एक को एक ही मयार पर जाँचा जाएगा। हर एक से एक ही उसूल की रोशनी में मामला किया जाएगा। न पैदाइशी एतिबार से किसी का मामला दूसरों से मुख़्तलिफ़ है, और न ऐसा है कि क़ुरआन के सिवा जो दूसरी आसमानी किताबें अल्लाह ने उतारी हैं, उनमें किसी गिरोह के बारे में यह ऐलान है कि उनका केस एक मुस्तसना केस है। वह भी ख़ुदा के हिसाब-किताब के क़ानून के तहत हैं, जिस तरह दूसरे तमाम लोग हैं।

ख़बरनामा इस्लामी मरकज़ — 285

- मिस शबीना अली और कोलकाता टीम के चंद दीगर अफ़राद ने 20-22 फ़रवरी 2025 को मुनअक़िद तीन रोज़ा इंटरफेथ वर्कशॉप में शिरकत की। इस मौक़े पर उन्होंने अमन और रूहानियत के

मौज़ू पर हाज़िरीन के सामने अपने ख़यालात का इज़हार किया। प्रोग्राम के आख़िर में मिस शबीना अली और उनकी टीम ने तमाम शुरका को अमन और रूहानियत से मुताल्लिक़ किताबें बतौर-ए-तोहफ़ा पेश कीं।

- तमिलनाडु से मौलाना इसरारुल हसन उमरी साहब लिखते हैं कि जनाब शिवकुमार (Sivakumar, b. 1952) अंग्रेज़ी ज़बान के रिटायर्ड प्रोफ़ेसर हैं। अंग्रेज़ी के साथ-साथ तमिल ज़बान पर भी उन्हें उबूर हासिल है, और वह कई मशहूर अंग्रेज़ी किताबों के मुतर्जिम भी हैं। हाल ही में उन्होंने सलमान रुश्दी की किताब *Knife* (मत्तबूआ अप्रैल 2024) का तमिल ज़बान में तर्जुमा किया है। यह किताब 12 अक्तूबर 2022 को सलमान रुश्दी पर किए गए क़ातिलाना हमले के बाद उसके एहसासात-ओ-ख़यालात पर मबनी है। इस किताब के तमिल तर्जुमे का इजरा चेन्नई बुक फ़ेयर (27 दिसम्बर 2024 से 12 जनवरी 2025) में नाशिर-ए-किताब के स्टॉल पर 8 जनवरी 2025 को अमल में आया। यह इजरा बिला-शुब्हा हाज़िरीन की ख़ुसूसी तवज्जो का मरकज़ रहा। इस मौक़े पर मौलाना इक़बाल अहमद उमरी साहब ने शिरकत फ़रमाई।

प्रोग्राम के बाद मौलाना इक़बाल उमरी साहब ने मुतर्जिम, नाशिर और दीगर अहम शख़्सियात की ख़िदमत में मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की किताब *शत्म-ए-रसूल* का अंग्रेज़ी तर्जुमा (*The Issue of Blasphemy*) बतौर-ए-तोहफ़ा पेश किया। बाद में महसूस हुआ गोया यह सब कुछ पहले से तयशुदा एक ख़ुदाई इंतिज़ाम का हिस्सा था। शिवकुमार साहब ने न सिर्फ़ दो-तीन दिन में यह किताब मुकम्मल कर ली, बल्कि एक हफ़्ते बाद फ़ोन करके बताया:

"वाक़ई, यह किताब क़ाबिल-ए-मुताला है और निहायत अहम इल्मी मुबाहिस पर मुश्तमिल है।"

इसी के साथ उन्होंने हमें अपने घर आने की दावत भी दी।

17 जनवरी 2025 की सुबह 11 बजे हम उनके घर पहुँचे। उन्होंने निहायत ख़ुशदिली के साथ हमारा इस्तिक़बाल किया। हमने उनकी ख़िदमत में मौलाना की मज़ीद चंद किताबें भी पेश कीं, जिनमें *God Arises* भी शामिल थी। रस्मी गुफ़्तगू के बाद, *The Issue of Blasphemy* पर तब्सिरा करते हुए शिवकुमार साहब ने कहा:

"यह किताब वाक़ई बहुत अच्छी है। आम तौर पर मेरा भी यही ख़याल था कि तमाम मुसलमान एक ही ज़ेहनियत के हामिल होते हैं, और उनके यहाँ बर्दाश्त की कमी होती है। इज़हार-ए-राय की आज़ादी को वह तस्लीम नहीं करते। लेकिन इस किताब को पढ़ने के बाद मालूम हुआ कि मुसलमानों में इसके बरअक्स सोच रखने वाले रहनुमा भी मौजूद हैं, जो वक़्तन-फ़वक़्तन अपनी क़ौम की सही रहनुमाई करते आए हैं।"

इस मौज़ू पर मज़ीद रौशनी डालते हुए मौलाना इसरारुल हसन उमरी साहब ने मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान का ज़िक्र करते हुए बताया कि जब सलमान रुश्दी के ख़िलाफ़ फ़तवा जारी हुआ, तो उस वक़्त पूरी मुस्लिम दुनिया में मौलाना वाहिद शख़्स थे जिन्होंने इस फ़तवे की खुलकर मुख़ालिफ़त की और उसे ग़ैर-इस्लामी क़रार दिया। यह बात सुनकर शिवकुमार साहब को बहुत ताज्जुब हुआ। गुफ़्तगू के दौरान वह निहायत इन्किसारी और कुशादा ज़ेहनी के साथ हमारी बातें सुन रहे थे। उम्मीद है कि इस मुलाक़ात के बाद Blasphemy के बारे में इस्लाम का दुरुस्त मौक़िफ़ उन पर वाज़ेह हो गया होगा।

बातचीत के दौरान जब उनसे पूछा गया कि क्या आप ख़ुदा के वुजूद पर यक़ीन रखते हैं? तो उन्होंने निहायत शाइस्तगी के साथ नफ़ी में जवाब दिया। जब उनसे वजह पूछी गई, तो उन्होंने कहा:

"दुनिया में इतने मसाइब और मसाइल हैं, लेकिन इन सब के दरमियान हमें कहीं ख़ुदा का वुजूद नज़र नहीं आया।" उन्होंने मज़ीद कहा: "मैंने कभी अपने अक़ीदे को किसी पर मुसल्लत करने की कोशिश नहीं की, और न ही उसे किसी बहस-ओ-मुबाहिसे का मौज़ू बनाया है।"

हमने उनसे दरख़्वास्त की कि वह ज़रूर *God Arises* का मुताला करें। यह मुलाक़ात तक़रीबन डेढ़ घंटे जारी रही। हम पुर-उम्मीद हैं कि वह इन किताबों को पढ़ेंगे और उनसे फ़ायदा उठाएँगे।

- बंगलोर टीम की जानिब से "मुस्लिम मआशरों में अमन का फ़रोग़" के उनवान से मुस्लिम इंतिज़ामिया के तहत चल रहे स्कूलों और कॉलेजों में वर्कशॉप्स का सिलसिला शुरू किया गया है। इस सिलसिले में 5 फ़रवरी 2025 को टीम की चार ख़वातीन — मिस तज़ईन, मिस आमिना, मिस आयशा और मिस कुदसिया — ने बंगलोर के मनाहिल स्कूल में एक वर्कशॉप मुनअक़िद किया। इस वर्कशॉप में उन्होंने टीचर्स और स्टूडेंट्स के सामने तामीरी ख़यालात पेश किए और यह वाज़ेह किया कि इस्लाम ने समाजी पुर-अमन पर किस क़दर ज़ोर दिया है। वर्कशॉप से क़ब्ल स्कूल की प्रिंसिपल और असातिज़ा से मुलाक़ात की गई, जिसमें उन्हें CPS International की सरगर्मियाँ बताई गईं। तफ़्सीली मालूमात हासिल करने के बाद, उन्होंने बड़ी दिलचस्पी के साथ अपने स्कूल में इस वर्कशॉप के आयोजन की इजाज़त दी।

प्रोग्राम में शरीक स्टूडेंट्स ने अपने तास्सुरात में कहा कि इस वर्कशॉप से उन्हें बहुत-सी नई और क़ाबिल-ए-अमल बातें सीखने को मिलीं, और उनके ज़ेहनों में मौजूद कई उलझनें दूर हो गईं।

(मिस फ़ातिमा सारा, बंगलोर)

बंगलोर से मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब के मज़ामीन पर मुश्तमिल अंग्रेज़ी मैगज़ीन *स्पिरिट ऑफ़ इस्लाम* शाया होता है।

इसके मुताले के बाद जनाब विश्वमोहन साहब ने हमारे वाट्सऐप पर अपने तास्सुरात कुछ यूँ बयान किए:

> “यह मैगज़ीन निहायत उम्दा है। आम लोग इस्लाम की बहुत-सी मुसबत बातों से ना-वाक़िफ़ हैं। हमें लगता है कि इस्लाम की नुमाइंदगी ऐसे अफ़राद के हाथ में होनी चाहिए, जो इन तामीरी पहलुओं को उजागर करें।”

Soulveda एक रूहानियत पर मबनी डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म है, जिसका मक़सद तहरीर के ज़रिए फ़र्द और समाज की फ़लाह व भलाई को सेक्युलर सतह पर फ़रोग़ देना है। मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब के अंग्रेज़ी और हिंदी मज़ामीन इस वेबसाइट पर बाक़ायदा से शाया होते हैं।

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

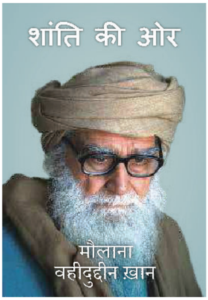

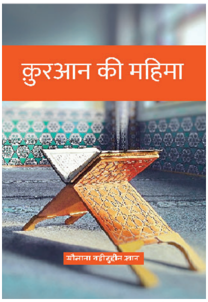

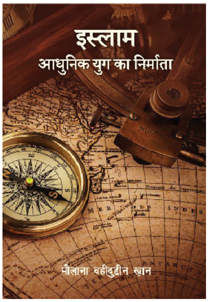

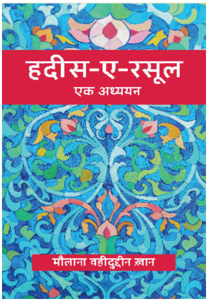

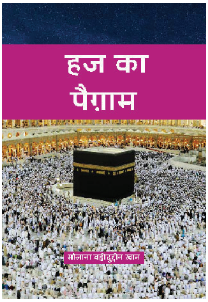

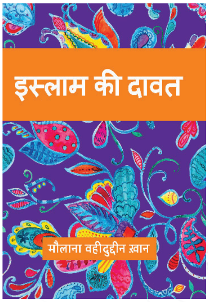

आध्यात्मिक सेट

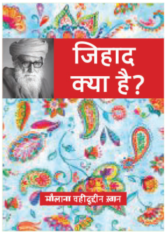

₹30/-

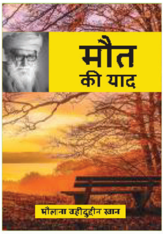

₹40/-

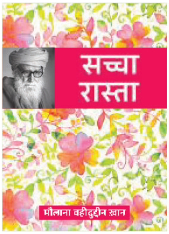

₹20/-

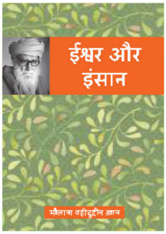

₹40/-

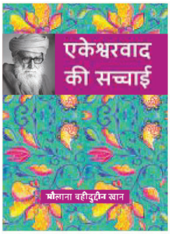

₹30/-

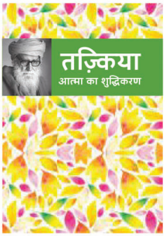

₹45/-

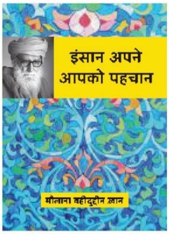

₹20/-

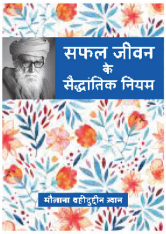

₹40/-